'संगीत'

मासिकपत्र] ः [वार्षिक मूल्य २)

इस विशेषांक का मू० १)

इस अंक के सम्पादक:-

कुं० महेशप्रतापबहादुर सिंह, बी.ए.

संचालक:-

प्रभूलाल गर्ग

लेख—सूची "संगीत" ध्रुपदांक १९३९

"संगीत" मासिक-पत्र] : : [वार्षिक मूल्य २)

प्रतिमास ठीक समय पर निकल रहा है। ग्राहक संख्या बड़ी तेजी से बढ रही है।

—क्योंकि—

भारतवर्ष में इस विषय का यह अकेला ही पत्र है और बहुत ही सस्ता है।

इसमें क्या—क्या मिलेगा ? सुनिये !

१—हारमोनियम पर निकालने के लिये तरह—तरह की राग-रागनियों तथा फ़िल्म गीतों के नोटेशन सरगमों सहित मिलेंगे।

२—हारमोनियम, तबला, बेला वांसुरी तथा सितार बजाने की शिक्षा घर बैठे मिलेगी।

३—तबले के ठेके और परन नक़शे सहित दिये जाते हैं और उनके बोल अंगुलियों से किस प्रकार निकाले जायंगे ? यह भली प्रकार समझाया जाता है।

४—प्रत्येक महीने नई—नई तर्जों के फ़िल्मगीत तथा चुने हुये भजन प्रार्थना दिये जाते हैं

५—प्रत्येक अङ्क में "शायरों का जल्सा" भी रहता है, जिसमें मशहूर शायरों की दिल को छीन लेने वाली शायरी पढ़कर आप वाह ! वाह !! किया करेंगे।

६—प्रतिमास रेडियो और फ़िल्मों के नये—नये गाने भी निकलते रहते हैं इनके अलावा सङ्गीत विद्वानों व प्रोफेसरों के लेख तथा नृत्यकला पर लेख निकलते रहते हैं

प्रति वर्ष २०० पृष्ठ का विशेषांक निकलता है, जो स्थायी ग्राहकों को मुफ्त मिलता है।

हम दावे के साथ कहते हैं !

सङ्गीत का ज्ञान बढ़ाने वाला इससे सस्ता दूसरा साधन आपको नहीं मिलेगा आज ही २) मनीआर्डर से भेज दीजिये और घर बैठे १ वर्ष तक सङ्गीत लहरी का आनन्द लीजिये। रुपया मिलते ही चालू वर्ष का विशेषांक तथा उसके बाद के अङ्क आपको भेज दिये जांयगे। वी० पी० मंगाने से २।) लगेंगे।

नोट—१९३७ की पूरी फ़ायल (विष्णु दिगंबर अङ्क विशेषांक सहित) पृष्ठ संख्या ६१४ मूल्य ३) डा० ।=) १९३८ की पूरी फ़ायल (भातखण्डे अङ्क सहित) पृष्ठ संख्या ६२० मूल्य २) डा० ।=) थोड़ी सी बची हैं, शीघ्र मँगा लीजिये।

पताः—मैनेजर "सङ्गीत" हाथरस—यू० पी०।

Printed By B. Nathuram Gupta at the Gokul Press Hathras.
Published by B. Prabhu Lal Garg Hathras.

संगीताचार्य श्री…

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः ।

जनवरी, फरवरी १९३९

संचालकः—प्रभूलाल गर्ग

वर्ष ५ संख्या १-२
पूर्ण संख्या ४९-५०

कामना !

(ले०—श्री० "उमेश" चतुर्वेदी साहित्य भूषण कविरत्न, जैपुर)

श्री चरणों की नाथ तुम्हारे सदा, रज माथे पै अपने लगाया करूं ।
ध्रुव धारणा मेरी यही है प्रभो, मैं हमेशा ही तुमको रिझाया करूं ॥
प द पद्म को प्रेम से धोया करूं, अपनी आंखों के जल से भिगोया करूं ।
द र्शनों से तुम्हारे सफल नैन कर, प्यास अपने हृदय की बुझाया करूं ॥
अं क से तुमको अपने लगाया करूं, द्वैत का भाव दिल से हटाया करूं ।
क भी दूर न दिल से करूं मैं तुम्हें, सदा प्रीति की रीति निभाया करूं ॥

उपरोक्त गायन की प्रत्येक पंक्ति के प्रथमाक्षरों को मिलाने से 'श्री ध्रुपद अङ्क' बनता है ।

संगीत-सुधा

(ले०—वै० मा० श्री० गालेश्वरानन्द "आनन्द")

दिन के प्रथम-प्रहर के सङ्ग ही,
गूँजी थी वह स्वर—झंकार।
नाच उठा हर्षातिरेक से,
जिससे चिर प्रसुप्त संसार ॥
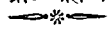
देवि भारती की वीणा का,
स्वर मधुर तम आकर्षण।
कहा धन्य देवों ने, पाया,
मानव ने रस मय जीवन ॥
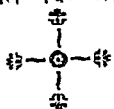
खिली मुकुल पंकज-पंखुरियाँ,
सौरभ को ले उड़ा समीर।
हुआ विरागी मन अनुरागी,
आकर स्वर सरिता के तीर ॥
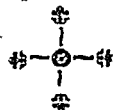
श्याम गान की आया फिर तो—
वंशी में दिखलाई दी।
मोहन को 'मोहन' कह-कह कर,
सब ने तुरत बधाई दी ॥

व्रज बालाओं पर ही उसका,
हुआ नहीं जादू संचार।
भूल गया 'कालिया' उसी के
स्वर में तो विष की फुङ्कार।

पागल 'बैजू' का पागलपन—
कहें 'इश्क की चीज बनी।
क्षण भर में नीरस दुनिया को,
पाया सब ने सुधा-सनी ॥

पत्थर भी पिघला करते हैं,
ये ऐसा आया विश्वास।
क्यों न गर्व से पुलकित होते,
फिर उस पागल पर 'हरिदास' ?

तानसेन की झाँकी का कुछ,
इस से ही अनुमान करें।
'ध्रुवपद' बन कर अचल होगईं,
जिसके ध्रुवपद की लहरें ॥
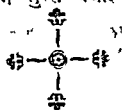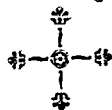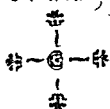
सूर-सूर की उक्ति शेष को,
मिले न क्यों स्रष्टा से कान ?
—'धरा, मेरु सब एक साथ ही,
हिलते तानसेन की तान।'
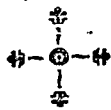
कौन चला है शाश्वत गति में,
अपने पथ पर कहो ? मगर।
उसी भारती की कुदृष्टि से,
छोड़ी हमने सत्य—डगर ॥

स्वर-साधन की बात भूल कर,
ले आए गजलों पर स्नेह।
ध्रुव को छोड़ अ-ध्रुव अपनाया,
कव्वाली गा हुए विदेह ॥

वह अतीत का स्वर्ण स्वप्न यह—
वर्तमान की व्यथा विकट।
हमें ले चले—यही चाह है,
फिर से गौरव—गेह निकट ॥

सम्पादकीय

(कुँवर महेशप्रताप बहादुर सिंह बी० ए०, शास्त्री विशारद)

—०—

'सरिगम पधनि' रतां तां वीणा संक्रान्तभान्त हस्तां तां।
शान्तां मृदुल कचान्तां, द्युति भरतां तां नमामि शिवकान्तां॥

अखण्ड मन्डला कारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥
नमः शिवाय निःशेष क्लेश प्रशम शालिने।
त्रिगुण ग्रन्थि दुर्भेद्य भव वन्ध विभेदिने॥
सर्वानन शिरोग्रीव सर्वभूत गुहाशयः।
सर्व व्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥

विचार तो बहुत दिनों से था कि एक छोटे से निबन्ध में सङ्गीत की आधुनिक प्रगति पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करूं; परन्तु कई कारणों से मेरा यह विचार कार्य रूप में परिणित न हो सका। अपने पूज्य गुरु श्री रामदेव पान्डेय मृदङ्गाचार्य के बार-बार उत्साह दिलाने पर 'सङ्गीत' के जुलाई वाले अङ्क में मैंने "सङ्गीतज्ञों और सङ्गीत सुधारकों के नाम एक खुली चिट्ठी" प्रकाशित की। इसके बाद मुझे यह तनिक भी सन्देह न था कि फिर इसी विषय पर लेखनी उठानी पड़ेगी अर्थात् 'एक नई बला' मेरे सिर पड़ेगी, परन्तु जब सङ्गीत के उत्साही सम्पादक ने अपने १६-६-३८ वाले पत्र में मुझसे विशेषाङ्क का सम्पादन भार ग्रहण करने का आग्रह किया तो मेरे होश ठिकाने न रहे। मैं अच्छी तरह समझता था कि इस भारी कार्य के लिये न तो मेरे पास समय ही है और न मुझ में इतनी योग्यता ही है, परन्तु सम्पादक महाशय के लपेटदार पत्र ने अन्ततोगत्वा मुझे लपेट कर ही छोड़ा। मुझे अपनी स्वीकृति भेज ही देनी पड़ी।

स्वीकृति भेजने के बाद मने 'सङ्गीत' के कुछ अङ्कों में संक्षिप्त नोटें भी प्रकाशित कीं। सुलेखकों और कवियों से इस बात की प्रार्थना की गई कि वे अपनी बहुमूल्य सम्मतियां भेजें, परन्तु इसका किसी भी कोने से कोई उत्तर न आया। निराश होकर मैंने अकेले ही इस कार्य को करना निश्चय कर लिया।

कार्य बड़ा दुस्तर है। 'सङ्गीत' का वास्तविक रहस्य, अभी तक सर्वसाधारण के सामने नहीं लाया जा सका है। संस्कृत के उन दुरुह ग्रन्थों का महासागर अभी तक नहीं पार किया गया है जिनमें सङ्गीत का तत्व छिपा हुआ है। इतस्वतः एकाध उत्साही पुरुषों ने गोते लगाये हों या उन्हें दो चार बहुमूल्य मोती हाथ लग गये हों तो यह दूसरी बात है। असंख्य धनराशि तो अभी लुप्त ही है। इसमें आवश्यकता है

समय, उत्साह और द्रव्य की। आज के बड़े कहलाने वालों के पास इस पवित्र कला का उत्थान करने के लिये तीनों में से एक भी तो नहीं है। यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है।

मैं 'सङ्गीत' के संचालक श्री प्रभूलाल जी गर्ग की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता क्योंकि उन्होंने जमाने की उल्टी दशा की चिन्ता न करके, हानि और लाभ को अलग रख कर "ध्रुपद अङ्क" जैसे आवश्यक विशेषाङ्क को निकालने का आयोजन किया। इनका यह उत्साह कितना श्रेय पूर्ण है, इसका अनुभव मैं अच्छी तरह कर सकता हूँ। यही कारण था कि मैं आपकी सहायता से मुह न मोड़ सका।

एक विशेषाङ्क के सम्पादकीय लेख के दृष्टिकोण से मेरे इस लेख मे कितनी कमी होगी इसे मै भली भांति जानता हूँ परन्तु फिर भी अपना कर्तव्य पालन करना ही है। आशा ही नहीं बल्कि विश्वास है कि गुणी सङ्गीतज्ञ एवं विज्ञ पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

* * * *

मानव जीवन में जो स्थान 'साहित्य' का है उससे किसी भी प्रकार न्यून स्थान 'सगीत' का नहीं है। साहित्य और संगीत दोनों हृदय की वस्तु हैं। जैसे-जैसे कोई सभ्यता की सीढियों पर चढ़ता है, जैसे-जैसे उसका राजनैतिक, सामाजिक, शारीरिक एवं अध्यात्मिक विकास होता रहता है, वैसे-वैसे उस देश का साहित्य और संगीत भी बदलता जाता है। अब भारतीय साहित्य का वह स्वरूप नहीं है जो आज से ५०० वर्ष पहले था। फिर यदि 'सगीत' की प्राचीन प्रणाली को बीसवीं सदी में हम उखड़ी-पुखड़ी हुई पाते हैं तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?

सभ्यता की धारा पतित पावनी गङ्गा की धारा है। किसी मे शक्ति नहीं कि गगा के प्रबल प्रवाह को रोक कर रख सके। परन्तु पुराणों में जो महिमा गगा के निर्मल शीतल और पवित्र जल की गाई है, उसे सुरक्षित रखने के लिये कुछ उपाय तो अवश्य ही सोचना पड़ेगा। यदि नित्य प्रति गगा की पवित्र धारा मे दस बीस गन्दे नाले आकर मिलने लगेंगे तो गगा के प्रति हमारा वह प्रेम कैसे रह सकेगा?

ठीक यही दशा सगीत-गगा की है। हमें सगीत में आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार अवश्य है, परन्तु सगीत की हत्या करके नहीं, सगीत का सर्वनाश करके नहीं। सगीत की आत्मा तो वहीं रहनी चाहिये। उसमें उलट-फेर करना मानो उसे मिट्टी में मिला देना है।

सङ्गीत' एक देव-दुर्लभ कला है, यह सबको नहीं प्राप्त होती। बड़े भाग्य से मिलती है। ससार का कोई भी ऐसा धर्म नहीं जिसमें इस कला को ऊँचा स्थान न दिया गया हो। भारतीय सङ्गीत और हिन्दू धर्म में तो बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। राग-रागनियों के नाम हिन्दू देवी-देवताओं के नामों पर ही रक्खे गये है (यथा भैरव भैरवी शंकरा केदारा इत्यादि) तालों की रचना भी इसी आधार पर की गई है, यही नहीं, ऐसे भी श्लोक मिलते हैं जिनमे प्रत्येक देवता के प्रिय वाद्यों का उल्लेख किया

गया है। भारतीय नृत्य में तो धार्मिक भावों को ही अपने "शरीर के अंगों के नियमित संचालन" द्वारा प्रदर्शित करना आदेश माना गया है। उदाहरणार्थ हम प्रदोष नृत्य के विषय के २ पद्य उद्धृत करते हैं।

कैलाश शैल भुवने त्रिजगज्जनि त्रीं गौरीं निवेश्य मणि कांचित रत्न पीठे
नृत्यं विधातुमभि वांछति शूलपाणिः देवाः प्रदोष समये तमनुभ्रजन्ति।

वाग्देवी धृत वल्लकी शतमखो वेणुं दध-ब्रजस्
तालानन्द करो रमा भगवती, गेय प्रयोगान्विता
विष्णुः सान्द्रमृदङ्ग वादन पटु,देवाः समन्तात्स्थिताः
सेवन्ते तमनु प्रदोष समये देवं मृडानी पतिम्।

एक अन्य स्थल पर श्री जगदम्बा जी को "वीणा वेणु मृदङ्ग-वाद रसिका" कहा गया है। नृत्य की शिक्षा उन्हें भगवान् शंकर जी द्वारा कितनी सावधानी से दी जाती है इसका उदाहरण हमें नीचे लिखे श्लोक से मिलता है। कवि लिखता है:—

"एवं धारय देवि बाहु लतिका नैवंकु रुष्वाङ्कम्।
मात्युच्चैनम कुञ्चयाग्र चरणं भो पश्य तावस्थिते॥
देवीं नर्तयतः स्ववक्रमुरजे नाम्भोधर ध्वानिना।
शम्भोर्वः परिपान्तु लम्बितलय छेदा हतास्तालिका॥

एक स्थान पर कवि कुल कमल दिवाकर श्री सूरदास जी रास का कैसा अच्छा शब्द चित्र खींचते हैं, देखिये—

त्रिभंग

नवत सुढङ्ग—

श्री नदनन्द वृन्दावन यमुन तट, अमित ये आनो मदन मर्दन, सघन कुञ्जन मन्जु अभिनव, जलज सुन्दर अङ्ग।

तन दिपति दामिनि दूरि कारी, मुख सुधाकर मानहारी भृकुटि कुटिल कटाक्ष संयुत चपल नयन कुरङ्ग.........

करतार औ मंजीर, बांसुरि, मुरज, वीन, रवाव, डंका हुडुक, डफ्फ, उपङ्ग चंगरू, खंजरी सुरचङ्ग......

सुरगन विमानन चढ़े ब्रह्मा, रुद्र, नारद, छकित पुलकित सूर जय जय जयति जय जय जयति नवल त्रिभङ्ग—

इस प्रकार हम देखतेहैं कि भारतीय संस्कृति में सङ्गीत को बड़ा उन्नत स्थान दिया गया है। कुछ भी हो, परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि एक समय ऐसा अवश्य था जब घर घर उच्च कोटि के सङ्गीत का पूर्ण रूपसे प्रचार था। साहित्य में इस विषय

के उदाहरणों का मिलना इसका ज्वलंत प्रमाण है। "सङ्गीत-साहित्य-कला विहीन. साक्षात् पशु" आज कल के सभ्य कहलाने वालों पर चाहे भले ही चरितार्थ हो, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय इतिहास में एक समय ऐसा भी था जब प्रथम श्रेणी का सङ्गीत सुनने सुनाने वाले अधिक संख्या में मौजूद थे।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस श्रेणी का सङ्गीत नीचे क्यों गिरगया और इसमें इतने भयानक परिवर्तन कैसे उपस्थित होगये ? जिन्होंने इतिहास का अध्ययन किया होगा और मध्यकालीन भारतवर्ष की सभ्यता को समझ चुके होंगे वह तत्काल ही इस अवनति का कारण बतला सकते हैं। मुसलमानी शासन की आंधी में प्राचीन भारतीय साहित्य, सगीत और अन्य ललित कलायें किस प्रकार तिनके की भाति अदृश्य होगई हैं इसे वेही समझ सकते है जिन्होंने इस दृष्टिकोण से इतिहास का परिशीलन किया है। 'सगीत' की प्राचीन पद्धति में विलास पूर्ण भावों के लिये कोई स्थान नहीं था। सगीत का उद्देश्य मनुष्य के हृदय को चञ्चल कर के कुमार्ग की ओर लेजाना नहीं था, गन्दे और कामोत्पादक गायन नाम मात्र को भी नहीं थे। देव मन्दिरों में उत्तमोत्तम गायनों द्वारा वीणा, वेणु, मृदंग, सुरबहार आदि उच्च श्रेणी के यन्त्रों की सहायता से ईश्वराधना की जाती थी। राज दरबारों में भी प्रथम श्रेणी के गायकों और वादकों की ही क़द्र थी, क्योंकि राजे महाराजे, कवि, चारण दरबारी सभी'संगीत' के मर्म को अच्छी तरह जानते थे।

परन्तु मुसलमानी दरबार इस आदर्श से कितने दूर थे, इसके लिये यहा दलीलें पेश करना इस लेख का मन्तव्य नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मुसलमानी काल में जिस संगीत का प्रचार हुआ वह प्राचीन प्रणाली के बिल्कुल ही विपरीत था। आवश्यकता भी मुसलमानी दरबारों मे नीचे दर्जे के संगीत ही की थी क्योंकि अच्छे सगीत को अन्य देश से आये हुए लोग इतनी शीघ्रता के साथ समझ नहीं सकते थे। इसके अतिरिक्त बादशाहों की विलासिता के फल स्वरूप वेश्याओं अथवा वार वनिताओं की संख्या भी दिनों दिन बढ़ने लगी। जब कलावन्तों और गुणी लोगों ने देखा कि अब हमारे काम की कद्र उठ रही है तो वे भी निराश होकर इन्हीं वेश्याओं के लड़के लड़कियों को शिक्षा देकर अपना पेट पालने की फिक्र में लगगये। बहुतों ने मिरासियों और साजिन्दों का काम करना आरम्भ कर दिया। न जाने कितने वीणा-वादकों ने अपनी 'मनो मुग्ध कारिणी' कला की यह असाधारण उपेक्षा देख कर 'सारंगियों' का पेशा उठाया। मृदग वादकों ने देखा कि इस 'गम्भीर गर्जन" का इन लोचदार कण्ठों से कोई सम्बन्ध ही नहीं है, तो उन्हों ने अपना वह देव वादन छोड़कर तबले जैसे अधम तालयन्त्र की शरण ली। इस प्रकार ध्रुपद और धमार की जगह ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा और कहरवा ने अपना रंग जमाया, असंख्य राग-रागनियों को छोड़ कर केवल कुछ श्रृङ्गार रसोत्पादन करने वाली रागिनियों पर ही पेशेवरों ने अभ्यास करना प्रारम्भ किया। अन गिनती तालों की सूची से केवल कहरवा, दादरा तीनताल, एकताल, झपताल आदि सरल होने के कारण सर्वसाधारण को विशेष पसन्द

आये। सङ्गीतज्ञों और सङ्गीत-रसिकों के दृष्टि कोण में इतना उत्कृष्ट परिवर्तन आजाने के कारण भारतीय सङ्गीत का भविष्य एक प्रकार से बिलकुल अन्धकार मय होगया।

आधुनिक काल में संगीत का यह प्रचार जो हम देख रहे हैं, इसका सूत्र पात केवल दस बीस वर्ष पीछे हुआ है, अभी तक आधुनिक सङ्गीत की कोई निश्चित गति नहीं है। स्थिति डांवाडोल है। सङ्गीत समितियों की संख्या भले ही बढ़े, कान्फ्रेंसों का काम ज़ोरों से जारी रहे, रेडियो अपने रास्ते पर निरन्तर चला करे, सिनेमा संसार को आकर्षित करने में कोई कसर उठा न रक्खे, परन्तु ऊंचे दर्जे के संगीत का उद्धार तभी हो सकता है जब देश के सभी धनी मानी इस ओर ध्यान दें और जो कुछ अंश 'प्राचीन प्रतिष्ठित संगीत' का कौने-कौने से मिल सके, इकट्ठा करके सर्व-साधारण के सामने रखने का अनवरत परिश्रम करें।

प्रस्तुत लेख में, मैं 'सङ्गीत' के पाठकों के सम्मुख प्राचीन सङ्गीत की कुछ विशेषताओं को रख कर यह दिखलाना चाहता हूँ कि आज कल के लिये वही सङ्गीत उपयोगी हो सकता है।

* * * *

बहुत से लोग 'ध्रुपद' का अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझते। कोई भ्रमवश इसे एक प्रकार का राग समझता है तो कोई इसे एक 'ताल' समझता है। ध्रुपद को राग कहने वालों की संख्या तो कम है परन्तु सैकड़ों ऐसे पेशेवर गवैये मिलेंगे जो ध्रुपद और चौताल में कोई भेद ही नहीं समझते। प्रथम तो आज कल ध्रुपद गायक और मृदंग-वादक ढूढ़ने से मिलते ही नहीं, और यदि मिलते भी हैं तो विशेष कर चौताल को ही ध्रुपद समझ कर गाते हैं। यह भ्रम इतना बढ़ गया है कि ध्रुपद को आजकल लोग जान बूझ कर चौताल में ही गाते बजाते और सुनते सुनाते हैं।

ध्रुपद किसी राग को नहीं कहते और न किसी ताल विशेष को ही ध्रुपद माना जा सकता है। 'ध्रुपद स्थैर्य गत्यो' के अनुसार ध्रुपद गाने के उस ढंग को कहते हैं जिसमें स्थिरता और गम्भीरता हो। जिसके पद स्पष्ट हों। ताल मध्य लय या विलम्बित लय में रहे। स्वरों को चञ्चल न करके गायक अत्यन्त सावधानी से इच्छित राग का स्वरूप खड़ा करे। ध्रुपद का गायन सबसे प्राचीन प्रणाली का गायन है। न केवल चौताल में बल्कि किसी भी ताल में और किसी भी राग में ध्रुपद गाया जा सकता है। वास्तव में ध्रुपद ही एक ऐसा गायन है जिसे हम निसंकोच किसी भी समाज में गा सकते हैं। इसके पद अत्यन्त सुन्दर और मनो मोहक होते हैं। अश्लीलता का नाम भी नहीं रहता। विशेषतः ध्रुपद के गाने तीन हिस्सों में बांटे जा सकते हैं।

(१) वे गायन जिनमें किसी देवता की वन्दना (स्तुति) की गई हो अथवा राजाओं महाराजाओं को आशीर्वाद दिया गया हो।

(२) वे गायन जिनमें किसी ऋतु का वर्णन किया गया हो।

(३) वे गायन जिनमें रागों और तालों के लक्षण वर्णित हैं।

अब हम पाठकों के सुभीते के लिए यथा सम्भव प्रत्येक विषय के कुछ चुने हुए ध्रुपद उदाहरण स्वरूप में दे रहे हैं, जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये ध्रुपद कितना पवित्र और कितना आनन्द-प्रद गायन होता है। इन गानों से ख्याल, ठुमरी आदि के अश्लील कुवृत्ति पैदा करने वाले गानों की तुलना करने के बाद यह अच्छी तरह पता चल जायगा कि आधुनिक समय में जब सङ्गीत के सुधारक गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं "कि इस ललित कला का घर-घर में रहना परम आवश्यक है"। किस प्रकार का सङ्गीत भले घर के लड़के लड़कियों को सिखाना चाहिये।

* * * *

ध्रुपद—वन्दना प्रकरण

(१)

चारताल, भैरवी

स्थाई—आद रमा ज्योति को जो जानै जन जगत जननि,
पावै यश जोद ध्यानै ताहि देत अचल शरण।
अन्तरा—होत प्रथम तेज और पुण्य को प्रताप बढत,
घटत अघ अज्ञान कुमति प्रीति है प्रतीति चरण॥
संचारी—गावत गुण नारदादि आदि लो सुरेश शेष,
अन्त नाहि पावत हैं ह्वै प्रचन्ड सुनेहूँ श्रवण।
आभोग—मगत हूँ भक्ति अचल देहु मा कृपा अनन्य,
और काहि जाचो, तुम सबके दुख दारिद्र हरनि॥

कितनी करुण पुकार है! भक्त ने हृदय खोल कर अपनी इष्ट-देवी जगदम्बा के सम्मुख अपनी दीनता रक्खी है। पूरे गाने को एक बार आदि से अन्त तक पढ जाने से ही अन्तरात्मा कितनी प्रफुल्लि हो जाती है, फिर भैरवी जैसी सुन्दर रागिनी में मृदङ्ग जैसे मधुर ताल यन्त्र के साथ कुशल-गायक इसमें कितना चमत्कार लायेगा, इसका अन्दाजा संगीत रसिक गण स्वयं लगा सकते हैं।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये।

(२)

चारताल, मालकोष

(रचयिता–स्वर्गीय मुन्शी भृगुनाथ जी सङ्गीताचार्य)

स्थाई–आदि शब्द आदि ज्योति, आदि तत्व आदि रूप,
पूरन परमानन्द महा सुख कारिणी ।
अन्तरा–निर्विकार निर्गुण ज्यों सगुण त्यों गुणातीत,
जयति जय नरुपमा अनेक रूप धारिणी ॥
संचारी–मान करौं मान तुम्ही, गान करौं गान तुम्हीं,
ध्यान धरौं ध्यान तुम्हीं, जगत जन तारिणी ।
आभोग–शिव तुम्हीं शिवा तुम्हीं, श्याम तुम्हीं श्यामा,
'भृगुराम' तुम्हीं रामा तुम्हीं, रावण निस्तारिणी ॥

पाठक स्वयं अनुमान करें कि ऐसे गानों से समाज की वर्तमान अपरिष्कृत रुचि बदलेगी अथवाः—

ठुमरी खमाज

(रचयिता–ललन पिया)

नई नारि नये रङ्ग ढङ्ग छल बल सों,
वो देखो आई आई रंगीली छबीली छबि सों ।

ऐसे गानों से, कौनसा ऐसा पिता होगा जो अपने लड़के–लड़कियों को ऐसे गानों की शिक्षा दिलाना पसन्द करेगा !

(३)

सूल–ताल

(रचयिता–श्री० तानसेन जी)

स्थायी–सुन्दर प्रवीण अति, चतुर अचल राज करो,
रवि शशि जबलों यहि भूमि पर ।
अंतरा–चिरजीव जबलौं ध्रुवधरनो तरनी पवन जल,
नृप मणि रामचन्द्र रघुवर ॥
संचारी–तेरी सौंह तूही भू–मन्डल विच और नहीं,
सर्व गुण आगर विश्वम्भर धुनुर्धर ।
आभोग–तानसेन तेरी स्तुति कहां लौं बखानै प्रभु,
तोहि नित्य ध्यावत सब सुर–नर मुनि ऋषि–वर ॥

—०—

प्रसाद गुण से परिपूर्ण यह पद कितना आकर्षिक है, इसे कला-मर्मज्ञ ही समझेंगे

(४)

राग श्री (चारताल)

स्थायी-भस्म भूषण अंग, चर्चित गंगा शिखर, वहुल रूप,
शिव योगाम्वर में डमरू वाजत फूंकत फनेस भारी।
अंतरा-योग युक्त शांत शिव शक्ति स्वरूप,शङ्कर शितिकंठ विप कंठा भरण,
नागन विराजत पद्मासन, ध्यान धरत भक्त रूप अवतारी ॥
संचारी-जपी तपी जगम योगी अरु सन्यासी उर्ध्व रेत अंघोरी उर्ध्व वाहु,
अव्यक्त अवधूत नगन पिनाकी करत आदेश आचारी।
आभोग-धन्य—धन्य महादेव, सिद्ध देव देवन पति,
रिद्धि-सिद्धि के दाता शाहंशाह आजम को होवो सुखकारी ॥

कितना भाव-पूर्ण पद है। देवाधिदेव पार्वतीपति आशुतोष श्री शङ्कर की कितनी अच्छी वन्दना की गई है, वह भी 'श्री' जैसी पवित्र रागिनी में।

*　　*　　*　　*

अव कुछ वानगी ऋतु वर्णन की लीजिये।

(१)

मेघराग—चारताल

स्थायी—धायोरी वादर द्रुमरारे, आये न पिया मन भावन।
तैसी पवन यों चलत धुन्धकार चहुं ओर,
तालन पर तान लागोरी विरह जगा—वन ॥
अंतरा—वर्षा का कितना हृदय-ग्राही चित्र आंखों के सामने आजाता है! पाठक ध्यान से समझें।

नीचे लिखे हुए पद में संगीत शिरोमणि श्री तानसेन जी पावस का वर्णन करने के साथ ही इन्द्र के कोप का कैसा अच्छा स्वरूप खड़ा करते हैं।

(२)

मेघराग झपताल

स्थायी-प्रवल दल साज झुक झूम या भूमि पर,
उमड़ घुमड़ घनघोर इन्द्र भर लायो।
अंतरा-वरसत मूसल धार, होत प्रहर चार,
कृष्ण गिरिधर गोकुल वचायो ॥
संचारी-बूंदन से धरनी-धर जीवन की रक्षा कर,
पशु—पक्षी जीव जन्तु अति सुख पायो।

(३)

ध्रुपद श्रृङ्गार रस–राग विहाग (चार ताल)

(रचयिता—श्री तानसेन जी)

स्थायी–नयन भरे तिहारे रूमि भूमि आवत ।
अन्तरा–विथुरी ये अलकें श्याम घन से जो लागत ।
झपकि झपकि उघरि जात मेरी जान तारे ॥
सञ्चारी–अरुन वरन नैन लाल—लाल डोरे ।
तापर भौंहें कंज वारि फेरि डारे ॥
आभोग–कहत गुणी तानसेन, सुनो शाह अकबर ।
उपमा में कौन दीन विना अंजन कारे ॥

अब ज़रा इस पद में वर्णित श्रृङ्गार रस की तुलना एक ख्याल गायक के इस गाने से कीजियेः–

ख्याल, राग जौनपुरी

मानो जरा इतनी कही, तुम बिन कल न परे,
मैका मोहन, विनती मोरी मानो कन्हाई ।
विरह दुख अति कठिन, नव यौवन नव मदन,
कैसे चतुर करूं सहन, काहे करो मोसे जुदाई ॥

दोनों का अभिप्राय श्रृङ्गार रस को जन्म देना है, परन्तु दोनों के दृष्टिकोण में कितना अन्तर है, इसे आंख वाले आंखें खोल कर देखें ।

अधिक उदाहरण न देकर अब हम ध्रुवपद की अन्य विशेषताओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। जितने पद उद्धृत किये गये हैं उन्हीं से विज्ञ पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वर्तमान समाज में ध्रुवपद ही के गाने सिखाये जाने चाहिये क्योंकि उनका सबसे पहला गुण यह है कि वे अश्लील नहीं होते और निःसंकोच लड़के लड़कियों, मां-बहनों और बहू-बेटियों के सामने गाये जा सकते हैं।

* * *

गाने बजाने में दो बातों की आवश्यकता पड़ती है पहिली आवश्यकता स्वर की है और दूसीरी ताल की । अब हमें यह देखना है कि ध्रुवपद की पद्धति में स्वर और ताल का योग कैसा है ?

तुम्हारा रूप

गोधन चराया कभी, तुमने बजाई बन्शी,
गिरि को उठाया कभी, ब्रज को बचाया है ।
रास भी रचाया ग्वाल ललना रिझाई कभी,
क्रूर कंस को पछाड़ स्वर्ग पहुंचाया है ॥
एक-एक रूप रहे अद्भुत तुम्हारे देव,
चीर जो चुराया कभी चीर भी बढ़ाया है ।
फिर भी हमें है भाया वैद्य का तुम्हारा रूप,
मोह-रोग पार्थ का जिससे नशाया है ॥

* * *

खेल रही शशिकला सुखियों के आंगन में,
दुखियों का आंगन तो तुम्हींसे मुसकाया है ।
बन्धु वर्ग लोभ वश रचते कुचक्र जब,
सत्य का,शान्ति का,तुम्हीं पर टिका पाया है ॥
करुणा कर, जहां तुम रहे जिन रूपों में,
गले सप्रेम वहीं पतितों को लगाया है ।
फिर भी हमें है भाया वैद्य का तुम्हारा रूप,
मोह-रोग पार्थ का जिससे नशाया है ॥

वै०भा०पालेश्वरानन्द 'आनन्द'

मीरा-भजन

हिरदय मन्दिर बस गई सूरत, सांवरिया तोरी ।
जो जन तुमको ध्यावे मन से ।
छूट जावे वह आवागमन से ॥
श्यामसुन्दर बनवारी, हिरदय मन्दिर ... ... तोरी ॥
भवसागर के केवट हो तुम ।
छैल छबीले नटवर हो तुम ॥
राधे रमन बनवारी, हिरदय मन्दिर ... ... तोरी ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणन बलिहारी ॥
हिरदय मन्दिर ... ... तोरी ॥

प्रेषक-
श्रीलालजी श्रीवास्तव

शिवताण्डव नृत्य का एक सुन्दर दृश्य !

Gokul Press. Hathras.

बैजू बावरा और गोपाल नायक

की

ध्रुपद प्रतियोगिता

(ले०—श्री० हरिनारायण मुखोपाध्याय)

१३ वीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में वृन्दावन के किसी बन में सङ्गीत में सिद्ध एक महापुरुष निवास करते थे। उनके पास कई शिष्य भी थे। पर विशेष प्रतिभाशाली लड़कों को छोड़कर सब को वे दूसरों के पास जाने का उपदेश देते थे। उन तपस्वी का नाम था, ब्रजलाल। पर उनका देश, जाति या सम्प्रदाय, किसी को नहीं मालूम था। वे प्रत्येक समय समाधि में मग्न रहते। किसी से साधारण लोगों की तरह बातें नहीं करते थे। साधारणतः यह देखा जाता है, कि साधक लोग संसारी लोगों से बचने के लिए उनके साथ पागल का सा बर्ताव करते हैं। ब्रजलाल भी पागल से थे, यह कहिये कि हरिप्रेम में मग्न रहते थे। लोग उन्हें बैजू-बावरा या बैजू पागल कहते थे। उनमें एक ईश्वरप्रदत्त अद्भुत शक्ति थी, जिससे वे किसी भी पशु की आवाज़ की नक़ल किया करते थे। एक समय वे घने जङ्गल में बैठे थे। वहां उन्हें एकाएक व्याघ्र की गर्जना सुनाई दी। उन्होंने उसकी नक़ल कर प्रत्युत्तर दिया जिसे सुन कर व्याघ्र उनके पास आ पहुंचा। परन्तु वे निर्भय बैठे रहे। थोड़ी देर के बाद व्याघ्र चला गया। इस घटना से उनको सन्देह हुआ कि शायद मेरी आवाज़ में कुछ आकर्षण शक्ति है, जिससे व्याघ्र आया। अब उन्होंने इस सन्देह को दूर करने के लिये कई पशुओं पर प्रयोग करके देखा। उनकी नक़ल की आवाज़ सुनकर वे सब पशु उनके पास आये, इससे उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास हो गया।

बैजू सङ्गीत विद्या के उच्च श्रेणी के विद्वान थे। अब वे नक़ल करना छोड़ अपने गाने से पशुओं को आकर्षित करने लगे। अभ्यास बढ़ जाने पर वे जिस पशु को चाहते, बुलाकर गाना सुनाते, उसे अपने गाने से इतना मोहित कर लेते कि वह कठपुतली की भांति बैठा रहता। यहां तक कि गाना सुनते समय हिंसक पशु तल्लीनता में अपनी हिंसा--वृत्ति भ भूल जाते थे। एक बार उन्होंने हिरन और व्याघ्र को साथ बैठा कर गाना सुनाया। दोनों अपना खाद्य-खादक भूल गये। उनका आश्रम बहुत दूर होने पर भी आस-पास के वनवासी ऐसे दृश्य देखने के लिये उनके यहाँ प्रायः आया करते थे, और गान से मोहित होकर व्याघ्र मृग आदि के साथ वहां अपना समय आनन्द से बिताते थे।

१३ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में ई० सन् १२९६ में दिल्ली पर अफ़गान-वंश का वृद्ध जलालुद्दीन खिजली शासन करता था, उसके कोई पुत्र नहीं था, अतएव अपने

भतीजे अलाउद्दीन को उसने अपना जामात बनाया। अलाउद्दीन प्रयाग के पास कड़ा माणिकपुर का शासक था। उसने दक्षिण के देवगिरि-पर चढ़ाई करके वहा के यादव राजा को हराकर बहुत सी संपत्ति प्राप्त की। वापस आने पर उसने अपने चाचा को मारकर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने दक्षिण पर फिर चढाई की (ई० स० १२९०-९८) और लूट-पाटकर बहुत सा धन प्राप्त किया।

इस प्रकार महाराष्ट्र के लुट जाने पर वहा से गोपाल नाम के एक सङ्गीत-सिद्ध पुरुष अपनी स्त्री और लड़की के साथ व्रजमण्डल में चले आये। गोपाल के विषय में केवल यही एक बात मालूम होती है कि वे महाराष्ट्र के रहने वाले थे। वृन्दावन आ जाने पर गोपाल प्राय बैजू के पास आया-जाया करते थे। दोनों सङ्गीत में प्रवीण थे। अत थोड़े ही समय में एक दूसरे की ओर आकर्षित हो गये। गोपाल सङ्गीत की राग-रागिनियों में प्रवीण थे। दोनों मे गान में प्रतियोगिता और प्रश्नोत्तर होते थे। गोपाल ने बैजू को हराने की बहुत कोशिश की पर सफल न हो सके। इस असफलता से उनके मन मे विरक्ति होने लगी। गोपाल नायक ने एक दिन निम्नांकित ध्रुपद बैजू बावरा के सामने प्रश्न के रूप मे गाई-

गोपाल नायक की ध्रुपद-कौशिकी-(सम्पूर्ण)

(चौताला और तिताला)

१-परज कहा से रिषभ कहा से, कहा से उपज्यो सुर गधार।
२-मध्यम कहा से पञ्चम कहा से, कहा से धैवत निषाद नार॥
३-आरोहि कहासे अवरोही कहासे, मूर्च्छना कहासे गीत-संगीतकी वार।
४-कहैं लाल गोपाल, सुनिये बैजू बावर अथाह जाकी गति अगम अपार॥

+		०		।		०		।		।	
सस	सस	गम	गम	गग	मग	मम	धन	नध	नध	पम	गम
पर	जऽ	कहा	ऽऽ	सेऽ	ऽऽ	रिऽ	षभ	कहा	ऽ	सेऽ	ऽऽ
मम	धध	नन	संसं	सस	ससं	सन	रंसं	नध	पम	गम	सरस
कहा	ऽऽ	सेऽ	ऽऽ	उप	ज्यो	सुऽ	ऽऽ	गन्धा	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽर
मम	पप	धन	ससं	सस	नसं	रस	रंरं	गंमं	गंमं	संसं	रंसं
मऽ	धम	मऽ	ऽऽ	कहा	ऽसे	पऽ	चम	कहां	ऽऽ	सेऽ	ऽऽ

ननं नन	धन संसं	संसं संसं	संन रंसं	नध पम	गर सरस
कहां ऽऽ	ऽऽ सेऽ	धैऽ वत	निषा ऽद	नाऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽर

(३–४)

गम गमस	स सस	नधप धनस	गम गमस	रर गग	मप नध
आऽ रोहिऽ	क हांसे	अवऽ रोहिऽ	कहां ऽऽसे	मुर छन	कहां सेऽ
धन सर	गम मग	रस सरस	मप धनसं	संसं संसंसं	नसं रंरं
गीऽ ऽत	संगी ऽऽ	तकी धारऽ	कहै ऽऽऽ	लाल गोपाल	सुनि येऽ
संसं नधम	गम गमस	सस सस	गंमं गंमंसं	ननन नधप	मगर सरस
बैजू बावर	नाऽ ऽऽद	अथा ऽह	जाकि ऽगति	अगम अपाऽ	ऽऽऽ ऽऽर

इस ध्रुपद के उत्तर में बैजू बावरे ने निम्न लिखित ध्रुपद गाकर सुनाई:-

बैजू बावरा की ध्रुपद—कौशिकी (चौताल)

मेह की सुर षरज रिषव—सुर छागरी दादुर की सुर हैरी गन्धार।
मध्यम तमचर सुर पंचम कोकिल केकी सुर धैवत निषाद सुर कुजार॥
आरोह हंस सो अवरोह वृषभ सो,मुरछना सर्प सो गीत संगीत की धार।
कहैं बैजू बावर सुनिये गोपाल लाल,केते गुनि पिछुड़े काहू न पायौ नादको पार॥

×	०	।	०	।	।
मग रस	सस सस	सस सस	रर रर	रस रर	रर सर
मेह कीऽ	सुऽ रऽ	षऽ रज	रिष वऽ	सुऽ रऽ	छांऽ गरी
गग गग	रर सस	सरगमप धन	न नन	सस सस	गरस रस
दाऽ दुर	कीऽ ऽऽ	सुऽऽऽऽ रऽ	हैऽ रीऽ	ऽऽ ऽऽ	गंऽऽ धार

मम मम	गग रस	सस सस	पम पप	नध पप	पप पप
मध्य मऽ	तम चर	सुऽ रऽ	पंऽ चम	कोऽ किल	सुऽ रऽ
धध धध	नध मम	धन धम	नन नन	धध पम	गरस रस
केऽ कीऽ	सुऽ रऽ	धैऽ वत	निषा दऽ	सुऽ रऽ	कुऽऽ जार
सरगम पधम	नन नन	नधपम गरस	रस सस	समप गधरस	नुसर सस
आऽऽऽ ऽरोहि	हंस सोऽ	अवऽऽ रोहीऽ	वृष भसो	मूऽऽ ऽरछना	सग्प सोऽ
गम गम	नन नन	गरस रस	सन संससं	नंसं सस	गंगं रंसंरं
गीऽ तऽ	संऽ गीत	कीऽऽ धार	कहैं वजू	या वर	सुनि पऽगो
सस सस	नन धध	पप मग	गग नन	गम गम	गरस रस
पाल लाल	केते गुनि	पिछु ड़ेऽ	काहू नऽ	पायो नाद	कोऽऽ पार

वैजू बावरे का यह उत्तर गोपाल नायक ने मान लिया। इस प्रकार वैजू की जीत हुई।

उस समय कई सम्प्रदायों में यह नियम था कि जो व्यक्ति इस प्रकार की प्रतियोगिता में हारता था उसे विजेता का शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ता था। कहीं-कहीं तो हारने पर उसे विजेता का दास ही नहीं होना पड़ता था, बल्कि उसके प्राण भी विजेता के अधिकार में रहते थे। इसके कई उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। शंकराचार्य का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी हारने पर उनका प्रधान शिष्य बन गया और उनके बाद गद्दी पर बैठा। गोपाल ने इसी तरह हार कर वैजू का शिष्यत्व स्वीकार किया। पर इसे वे अपमान-जनक समझते थे, जिससे दुखी रहते थे और दूसरों के सामने वैजू को गुरु स्वीकार करने में आनाकानी करते थे। इसी समय गोपाल की स्त्री मर गई। तब गोपाल अपनी लड़की मीरा को लेकर वैजू के आश्रम के नजदीक एक झोंपड़े में रहने लगे। उनकी कन्या बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि की थी। वह थोड़े ही दिनों में सङ्गीत-विद्या में पारगत हो गई।

इस प्रकार पाँच-छः वर्ष बीत गये। परन्तु निर्जन स्थान में वैजू का शिष्य बन कर रहना गोपाल को पसन्द नहीं था। वे राजधानी में या अन्य जन पूर्णस्थान में स्वाधीन रूप से रहने के लिए उत्कंठित थे। कुछ शिष्यों को एकत्र कर गुरु बनने की

भी उनको अभिलाषा हुई। दूसरे स्थान में जाने के लिए गोपाल ने बैजू से आज्ञा माँगी बैजू ने उनको प्रसन्नता के साथ अनुमति दे दी।

अनपढ़ होनेपर अलाउद्दीन ने जैसी उन्नति की वैसी किसी दूसरे सम्राट् ने न की होगी। उसने सिकन्दर सानी की उपाधि धारण की और उसकी दिग्विजयी सेना ने कन्या कुमारी तक सारे देश पर विजय प्राप्त की। उसने मुग़लों को भी बार २ हराया उसके दरबार में गुणी, विद्वान्, धर्मतत्वज्ञ और साधु पुरुष सम्मान पाते थे। उसकी राज-सभा में सङ्गीतज्ञों के आदर की बात सुन गोपाल भी दिल्ली में जाकर रहने लगे। थोड़े ही दिनों में सङ्गीत-सिद्ध के नाम से उनका सम्मान होने लगा। लेकिन कोई उनका पूर्वेतिहास नहीं जानता था। वे अपने गुरु का नाम किसी को नहीं बतलाते थे। कुछ दिन के बाद वे राजसभा की संगीत-सभामें परीक्षार्थ बुलाये गये। सुल्तान ने खुश होकर उन्हें नायक का पद दिया और यथोचित पुरस्कार देकर उनका आदर किया। देखते-देखते उनका यश देश भर में फैल गया। सम्राट् के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अपने गुरु का नाम न बतला कर यह कहा कि हमें संगीत-विद्या ईश्वर-कृपा से प्राप्त हुई है।

संयोगवश कुछ दिन के बाद बैजू घूमते-घूमते राजधानी पहुँचे। वहां उन्होंने सुना कि दो-चार दिन के बाद किसी त्योहार के उपलक्ष्य में एक विराट् संगीत-सभा होगी और वहां राजसभा के प्रधान रत्न (नायक) गोपाल अपनी असाधारण-शक्ति का परिचय देंगे। क्रमशः संगीत-सभा का दिन आ गया। उस विराट् सभा में स्वयं सुल्तान अलाउद्दीन रत्नजड़ित सिंहासन पर विराजमान हुआ। उसके चारों तरफ़ राजवंश के कुमार, प्रधान कर्मचारी, मंत्री, सामन्त आदि बैठे। अपने निर्दिष्ट स्थान पर विद्वमन्डल, गायक आदि भी बैठे थे। एक ओर जन-साधारण के लिए भी बैठने का स्थान था। जब गोपाल का गान आरम्भ हुआ तब सब श्रोता मुग्ध होकर पत्थर की मूर्ति के समान स्तब्ध हो गये। सभा में इतना सन्नाटा छा गया था कि सुई गिरने की आवाज भी साफ़ सुनाई दे जाती। गोपाल की एक उच्च तान से मुग्ध होकर निकट के उपवन के कुछ मृग इतने बड़े जनसमूह की परवाह न करके सभा में घुस आये और नज़दीक खड़े होकर गाना सुनने लगे। मृगों का आना गोपाल के कई श्रोताओं ने पहले भी देखा था, परन्तु इतने बड़े जनसमूह के सामने उनके आने की किसी को भी आशा न थी। इतने में एक मलिन, जीर्ण वस्त्रधारी मनुष्य निर्भय रूप से आगे आया और गोपाल का मस्तक सूँघ कर उसे आशीर्वाद दिया। उसने कहा—'हे प्रिय पुत्र! तुमने बहुत अच्छा गाया।' बैजू को इस प्रकार आते हुए देख कर गोपाल डर गये। पर उन्होंने बैजू को प्रणाम या अभिवादन नहीं किया। इस आगन्तुक के व्यव-हार से आश्चर्यचकित होकर सुल्तान ने गोपाल से उसका परिचय देने के लिए कहा। गोपाल ने उत्तर दिया कि "जहाँपनाह! मैं इसे नहीं जानता। मालूम पड़ता है, इसने

मुझे कहीं देखा है। देखने में तो चाण्डाल-सा मालूम पड़ता है। बार-बार पूछने पर जब गोपाल ने नहीं बतलाया तब बादशाह ने स्वयं बैजू से पूछा। बैजू ने हँस कर उत्तर दिया कि यह गोपाल पहले मेरे पास संगीत-विद्या सीखता था। बहुत दिनों से इसको नहीं देखा, इसलिए देखने आया हूँ। सुल्तान समझ गया कि गोपाल गुरु को अस्वीकार कर रहा है और यह जब गोपाल का गुरु है तब अवश्य ही बड़ा गुणी और संगीतज्ञ होगा। उसने क्रोध से कहा कि गोपाल, संगीत में प्रवीणता प्राप्त होने से तुमको इतना घमण्ड हो गया कि तुम अपने गुरु को अस्वीकार कर रहे हो? अच्छा तो अब गुरु-शिष्य की परीक्षा होगी और हारने पर इस अपराध के लिए प्राणदण्ड मिलेगा।

बादशाह की आज्ञा से गोपाल ने मुलतानी राग में गाना आरम्भ किया।

मुलतानी

दिल्लीपति नरेन्द्र सिकन्दर शाहे जाके, डर से धरणी पै हिल हिलायो।
दल शाहे महिमा अपार अगाध जहा, गुणी जन विद्या तहा किरत छायो॥
नाद विद्या गावे सुनि आलम धावे, दिन दुनिके तुमहि अवतार आयो।
कहत नायक गोपाल चिरंजीव रहो, पादशाह गहन ते आय मृग धायो॥

गाना सुनकर एक हिरन उस सभा में घुस आया। उसके गले में एक माला डाल दी गई। गाना समाप्त होने पर वह हिरन चला गया। इसके बाद बादशाह ने बैजू की ओर गाने के लिये इशारा किया। बैजू ने भविष्य जानकर हँसते हुये कहा कि "काल के सामने किसी की नहीं चलती"।

बैजू ने गाना आरम्भ किया। गोपाल मन-ही-मन में भावी घटना का आभास पाकर चिन्तित हुए। पर ऊपर से बहुत निस्संकोच भाव से बैजू से बात-चीत कर रहे थे। गाना आरम्भ होते ही उद्यान के व्याघ्र, मृग आदि नाना प्रकार के पशु और पक्षी सभा में आकर एकत्र हो गये। उनमें वह मालाधारी मृग भी था। क्रमशः सङ्गीत और प्रबल होने लगा और सभा के मनुष्य, पशु आदि श्रोता वाह्य ज्ञान-शून्य हो कर सङ्गीत सुनने लगे। आलाप की चरम सीमा होने पर आँगन का पत्थर पिघल गया*।

---

*इस घटना को कुछ लोग अत्युक्ति और असंभव समझेंगे, परन्तु मेरा विश्वास है कि [illegible]गीत समाज में विशेषत ध्रुपद समाज में प्रचलित आख्यानों को अपनी रुचि या इच्छा के अनुसार बदलने का अधिकार मुझे नहीं है। इसलिये मुझे यह कथा जैसी मिली वैसी ही पाठकों के सम्मुख रखता हूँ। वे अपनी रुचि या इच्छा के अनुसार इसका अर्थ लगा सकते हैं। —लेखक

तब बैजू ने अपने हाथ के करताल फेंक कर गाना समाप्त किया। गाना समाप्त होते ही पत्थर कड़ा हो गया और बैजू की करताल उसी में जम गई। सुल्तान ने ऐसा अद्भुत संगीत पहले कभी नहीं सुना था, न ऐसी घटना देखी थी। उसने गोपाल से कहा कि तुम अपनी संगीत विद्या पर गर्व करते हो। तुमको गान से इस पत्थर को पिघला कर करताल निकालनी पड़ेगी, नहीं तो अनुचित गर्व के लिये तुम्हें योग्य दण्ड दिया जायगा। गोपाल ने अब अपनी पूर्ण शक्ति गाने में लगा दी। परन्तु जिस प्रकार बैजू के गाने से पत्थर पिघल गया, उस प्रकार उसके गाने से नहीं हुआ और करताल नहीं निकल सकीं। उस समय इस प्रकार के अपराध के लिये सिर काटा जाता था। फलतः सुल्तान की आज्ञा से उसका शिरच्छेद किया गया। बैजू ने अपने प्रिय शिष्य के बचाने के लिये बहुत कोशिश की परन्तु कुछ फल नहीं हुआ।

गोपाल की मीरा नाम की जो कन्या थी, उसी ने उनका मृत-संस्कार किया, और अस्थि यमुना में फेंकते समय रोते-रोते वह मल्हार गाने लगी। कहावत है कि उसके गाने के प्रभाव से और शोक से गोपाल के शरीर की हड्डियों ने जुड़कर पूर्ण शरीर का रूप धारण कर लिया, पर उस पर मांस नहीं था। लोगों ने उसे यह कहते सुना कि "मीरा तू ने मेरे लिये बहुत किया, लेकिन मैं अपने कर्म का फल भोग रहा हूँ"।

अब मीरा मातृ-पितृ विहीन हो गई। बादशाह ही उसका अभिभावक हुआ। उसकी आज्ञा से मीरा ने मुसलमान धर्म ग्रहण किया। किसी संगीत-वंश में उसकी शादी हुई। कहा जाता है कि इसी वंश में मुहम्मद गौस ने जन्म लिया और उसकी कन्या के साथ तानसेन का विवाह हुआ।

शिष्य की मृत्यु के बाद विरक्त होकर बैजू ने राज सभा छोड़ दी। इन्होंने अपना शेष जीवन तीर्थ-यात्रा में बिताने का संकल्प किया। इसके बाद उन्होंने किसी संगीत सभा में भाग नहीं लिया। उनकी मृत्यु की कोई विश्वसनीय कथा प्रचलित नहीं है। पर अनुमान है कि गोपालके पश्चात् वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे।

जो मन मोहन के प्रेमी कहलाते हैं !

(श्री० "विन्दु" जी शर्मा "संगीत भूषण")

कुछ दशा अनोखी उनकी वतलाते है।
जो मन मोहन के प्रेमी कहलाते हैं ॥

जब से दिलदार हुआ साँवलिया प्यारा।
तब से छूटा जग का सम्बन्ध सहारा ॥
हर वार हर जगह रुक कर यही पुकारा।
है किधर छिपा दिलवर घनश्याम हमारा ॥
क्या खबर उन्हे हम कहाँ किधर जाते है ?
जो मन मोहन के प्रेमी कहलाते है ॥ २ ॥

परवाह नहीं गर तन के वस्त्र फटे हैं।
विखरे है सर के वाल लटे लपटे हैं ॥
सूखे टुकड़े ही खाकर दिवस कटे हैं।
फिर भी सनेह पथ पर अलमस्त डटे हैं ॥
वन वृक्षों को निज दुख सुख समझाते हैं।
जो मन मोहन के प्रेमी कहलाते हैं ॥ २ ॥

जग भोग, और उद्योग, रोग से माने।
झोपड़े और नृप महल एक ही जाने ॥
पकवान मिले या मिले चना के दाने।
दोनो मे खुश हैं मोहन के मस्ताने ॥
भ्रम शोक मोह मन में न कभी लाते है।
जो मन मोहन के प्रेमी कहलाते हैं ॥ ३ ॥

मिल गई जहा पर जगह पडे रहते हैं।
सर्दी, गर्मी, वरसात, धूप सहते हैं ॥
खामोश किसी से कभी न कुछ कहते हैं।
रस सिंधु दृगो से प्रेम "विन्दु" वहते हैं ॥
नाचते, कभी हँसते, रोते, गाते हैं।
जो मन मोहन के प्रेमी कहलाते हैं ॥ ४ ॥

ध्रुपदाचार्य तानसेन की १ ध्रुपद !

चौताला मात्रा १२	जोगिया	जाति सम्पूर्ण

जय गंगा जगतारिणी पापहारिणी वेद वरणी बैकुण्ठ वासिनी।
भागीरथी विष्णुपद पवित्रा त्रिपथगा जान्हवी जगपावनी जगजानीं ॥
ईशशीश मध विराजत त्रिलोकपालन किये जीवजन्तु खग मृग सुरनर मुनि मानि।
स्तुति करत 'तानसेन' तुम हो भक्त जनन की भीष्म जननि भुक्ति मुक्ति प्रदायनी।

स्थायी

+		०		१		०		२		३	
ध	प	प	प	प	पधम	मप	मपध	पमगर	गग	र	स
ज	ग	ता	ऽ	रि	णीऽऽ	जग	ऽऽऽ	ऽऽऽऽ	जन	ऽ	नी
र	र	स	गर	स	स	रम	पप	न	ध	प	धम
पा	प	हा	ऽऽ	रि	णी	वेऽ	ऽद्	व	र	णी	ऽऽ
म	प	मपध	पमग	ग	र	स	स	रम	प	पध	पधन
वै	कु	ऽऽऽ	ण्ठ	वा	ऽ	सि	नी	जय	गं	गाऽ	ऽऽऽ

अन्तरा

ध	प	धम	प	सं	सं	संसं	संसं	रंसंगंरं	सं	संन	धप
भा	गीं	ऽऽ	र	थी	ऽ	विष्णु	पद	ऽऽऽप	वि	त्राऽ	ऽऽ
प	पप	प	मगमप	प	पप	पप	धपरं	संसं	सं	ननध	पधम
त्रि	पथ	गा	ऽऽऽऽ	जा	न्हवी	जग	ऽऽऽ	पाऽ	वनी	ऽऽऽ	ऽऽऽ

म	प	म	पध	पम	ग	र	स	रम	प	पध	पधन
ज	ग	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	जा	नी	जय	गं	गाऽ	ऽऽऽ

संचारी और आभोग

ममम	पपप	पपन	धपप	ससंसं	नधप	धपप	मम	गगर	सस	रम	पप
ईऽश	शीऽश	मधवि	राजित	त्रिऽऽ	लोऽक	पालन	किये	जीऽव	जन्तु	खग	मृग
ननध	पप	मम	गमप	धपधम	पधसं	सरसगं	रससं	धध	सं	नन	धध
सुरऽ	नर	मुनि	माऽनि	स्तुतऽऽ	करत	ताऽऽऽ	नसेन	तुम	हो	भक्त	ऽऽ
पपप	पप	मम	पपप	पधरस	नधप	मपमप	धपमग	रस	रमप	पध	पधन
जनन	कीऽ	भीष्म	जननी	भुऽऽक्ति	मुऽक्ति	प्रदाऽऽ	ऽऽऽऽ	यिनी	जयगं	गाऽ	ऽऽ

—(*)—

चिन्ह परिचय

ध	जिन स्वरों के ऊपर नीचे कोई चिन्ह न हो, वे मध्य सप्तक के शुद्ध स्वर हैं।
ध	जिस स्वर के नीचे पड़ी लकीर हो वे कोमल स्वर हैं, किन्तु कोमल मध्यम पर कोई चिन्ह नहीं होगा, क्योंकि कोमल 'म' शुद्ध माना गया है।
मं	तीव्र मध्यम इस प्रकार होगा।
नी	जिनके नीचे बिन्दी हो, वे मन्द्र (पाद) सप्तक के स्वर हैं।
सं	ऊपर बिन्दी वाले स्वर उच्च (तार) सप्तक के हैं।
प –	जिस स्वर के आगे जितनी – लकीर हों उन्हे उतनी, मात्रा तक और बजाइये।
रा ऽ	जिस अक्षर के आगे ऽ चिन्ह जितने हों उसे उतनी ही मात्रा तक और गाइये।
धप	इस प्रकार २ या ३ स्वर मिले हुए (सटे हुए) हों वे १ मात्रा में बजेंगे।
× | ०	× सम। ताली, ० खाली के चिन्ह हैं।
*	ऐसा फूल जहां हो, वहां पर १ मात्रा चुप रहना होगा।

भारतीय गान-विद्या का संक्षिप्त अर्वाचीन इतिहास!

आधुनिक अनुसंधानकर्ताओं की खोज से ज्ञात हुआ है कि भारतीय गान-विद्या का अस्तित्व ब्राह्मण काल में (अर्थात् विक्रम संवत् से १४०० वर्ष से अधिक और २५०० वर्ष से कम पूर्व के काल में) स्थापित हुआ था। लग-भग १०० वर्ष से योरोपियन व भारतीय संगीतज्ञ भारतीय गान-विद्या की अर्वाचीन खोज करते आ रहे हैं। कैप्टेन बिलार्ड साहब ने सन् १८३४ में भारतीय गान-विद्या के विषय पर एक निबन्ध सोसाइटी आफ आर्ट (लन्दन) को भेजा था। सर विलियम जोंस ने हिन्दी म्यूज़िकल स्केल्स, और मि० वोजंक्वेट ने हिन्दू डिवीज़न आफदी ऑक्टेव, नाम के दो निबन्ध रायल सोसाइटी आफ आर्ट को सन् १८७७ में भेजकर भारतीय गान-विद्या की खोज में वृद्धि की थी। तदुपरान्त मि० पैटर्सन और कैप्टेन डे नामक दो विद्वानों ने 'म्यूज़िक आफ सदर्न इन्डिया, और मि० एलिस ने 'म्यूज़िकल स्केल्स आफ दि वर्ल्ड, नामक दो उपयोगी निबन्ध सन् १८८५ में सोसाइटी आफ आर्ट के पास भेजे थे। योरपियन पंडितों की खोज के उपरान्त बंगाल के प्रसिद्ध पंडित राजा सुरेन्द्रमोहन जी ठाकुर और मद्रास के मि० चिन्ना स्वामी जी मुदलियार एम० ए० ने भारतीय गान-विद्या की खोज की, और अँग्रेजी में इसी विषय पर दो ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित किये। इनके उपरान्त भारतीय गान-विद्या का प्रचार करने वाले मि० पिंगले, सहस्त्र बुद्धे, कुंटे, बन हट्टी इत्यादि अनेक पण्डित महाराष्ट्र में हुए। १६०७-८ में राव बहादुर देवल जी (रिटायर्ड डु०डि० कलक्टर) ने 'म्यूज़िक ईस्ट एण्ड वेस्ट' नाम का छोटा सा ग्रन्थ लिख कर प्रसिद्ध किया। फिर आपने १६१० में कठिन परिश्रम के उपरांत 'हिन्दू-म्यूज़िकल स्केल एण्ड दी ट्वेंटी टू श्रुतीज़' नाम का और एक ग्रन्थ पाश्चात्य और प्राच्य पंडितों के सम्मुख उपस्थित किया। आप ही के समकालीन मित्र मि० ई० क्लेमेंट (डि०जज) साहब ने, जो कि इँगलिश गान-विद्या के प्रोफेसर हैं, पूना के प्रो० अब्दुलकरीम के पास भारतीय गान-विद्या का थोड़ा-सा अभ्यास करके 'इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी आफ़ इण्डियन म्यूज़िक' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। देवल जी ने व आपने मिल कर 'फ़िल हारमोनिक' नाम की एक संस्था स्थापित की। भारतीय गान-विद्या के नियमानुसार बाईस श्रुतियों (स्वरों) का एक हारमोनियम और डाया कॉर्ड नामक एक श्रुति वीणा भी बनवाई। आपके इन दोनों बाजों में बाईस श्रुतियाँ बराबर वजती हैं। गान-विद्या सीखने वालों को स्वर का अभ्यास करने के लिये ये बाजे बहुत ही लाभदायक और उत्तम हैं! हमारी गान-विद्या की हालत हमारे देश में ही बिलकुल गिरी हुई है। पाश्चात्य देशों में संगीत-कला का पालन पोषण प्रायः राजा व प्रजा, दोनों के ही द्वारा हुआ करता है। उन देशों में प्रजा व सरकार के उत्साह से अनेक संगीत के विद्यालय, व विश्वविद्यालय व संगीत शास्त्र की अनेक संस्थायें स्थापित हुआ करती हैं, अनेक पुस्तकें व मासिक पत्र भी इन विषयों पर निकला करते हैं, और वे सब संगीत-कला की वृद्धि के लिये अत्यन्त लाभदायक होते हैं। इतना ही नहीं वहां की संगीत-कला में

प्रवीण मनुष्यों को जो सम्मान मिलता है, वह लार्ड को भी दुर्लभ होता है। पर हमारे देश में तो सब उलटा ही दिखाई देता है। जो सम्मान एक ओहदेवाले धनी के श्वान को देते हैं, उतना भी सम्मान हमारे देश-भाई भारतीय-संगीतकला के प्रवीण प्रोफेसरों को देने मे हिचकते हैं। कहिये यह कितनी लज्जा की बात है ?

कैप्टेन डे.सा० ने अपने म्यूजिक आफ सदर्न इंडिया ग्रन्थमें लिखा है-स्ट्रावों का यह मतहै कि ग्रीक गानविद्या का भारतीय गानविद्याके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ाहै,और भारतीय शास्त्रगत विषय को उससे अधिक लाभ भी हुआहै, कैप्टेन सा० और स्ट्रावों के मतोंपर वाद-विवाद करने की हमें आवश्यकता नहीं है। भारतीय गान- विद्या की खोज करते समय योरपियन और भारतीय उक्त पंडितों में से,देवल जी के अतिरिक्त मेरे मतानुसार सबने भूल की है। शायद मेरी ही भूल हो। पर अपना मत प्रकाशित करने के लिये मुझे कोई बाध्य नहीं कर सकता। देवल जी व अन्य विद्वानों की खोज में क्या भ्रम है, यह जानने की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य होगी। अपनी भारतीय गान-विद्या संस्कृत भाषा मे लिखी जाने के कारण सारे शास्त्र की रचना श्लोक बद्ध हो गई है। इसलिये अन्वयार्थ, विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि देखकर और गणित-शास्त्र के अनुसार सब विषय की कसौटी पर कसकर जिस प्रकार देवल साहब ने शास्त्र-विवरण किया है.वह अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता । भारतीय गान-विद्या की स्वतन्त्र विशेषता जानने की इच्छा की पूर्ती केवल, देवल साहब के ग्रन्थ से ही हो सकती है। संगीत शब्द की शास्त्रीय व्याख्या यह है।'गीतं वाद्य' तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते,संगीत का मुख्य विषय तो गान-विद्या है,और गान विद्या की इमारत बाईस श्रुतियों (स्वरों) पर खड़ी है। गान-विद्या में यदि कोई महत्व का और कठिन विषय है, तो यही। ये बाईस स्वर कौन से हैं, प्रत्येक स्वर में गणित के अनुसार कितना अन्तर होता है, प्रत्येक स्वर की नाद-लहरें (हाय ब्रे शंस) कितनी होती हैं, किस राग-रागिनी में कौन-कौन स्वरों का समावेश होता है, ये सब नियम भारतीय गान-विद्या की पुस्तकों में श्लोक बद्ध हो चुके हैं। ये सब बातें देवल साहब के ग्रन्थ में, दूसरे आधुनिक ग्रन्थों की अपेक्षा,विशेष शुद्ध रूप में मिलती हैं। यह निर्विवाद है कि इस विद्या का अन्त नहीं, और यह भी सत्य है कि "बहुरत्ना वसुन्धरा !" परन्तु यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि भारतीय गान-विद्या की आधुनिक खोज में देवल जी का सबसे ऊंचा स्थान है अस्तु। पंडित प्राय दो प्रकार के होते हैं, एक शास्त्र जानने वाले, दूसरे उसके अनुसार क्रिया करने वाले। युग क बलिहारी है। आज कल सत्य का तो कहीं पता ही नहीं लगता। फिर दंभ, अहकार इत्यादि की छाप जनता के हृदयों पर गहरी बैठी है। लोग सत्य की ओर से मुंह मोड़ कर असत्य को अपनाते हैं। इस अध पतन का कारण ढूंढे मिलना कठिन है। भारतीय गान-विद्या में बाईस श्रुतिया होती हैं, और इन्हीं से राग-रागिनियाँ बनती है, यह हमारे देश के आधुनिक गवैयों को ज्ञात नहीं, या यों कहिये कि जो स्वयं अपने को जन्मसिद्ध बुद्धिमान् समझते हैं, उनकी पैठ ही कितनी ? जिन्हें

अपनी गान-विद्या के विषय में कुछ ज्ञात नहीं, वे दूसरों (पाश्चात्यों) की कला को क्या समझे? पुनःउनकी अपनी कलाओं के अन्तर्गत कौन-विषय कम और कौन-अधिक है। यह समझना तो कठिन है। यदि उनको बतलाया भी जाय, तो उस से क्या लाभ? ऐसे तो हमारे भारत में गवैयों और बजवैयों की कमी नहीं है, और न गान-विद्या के ऊपर ग्रन्थ व लेख लिखने वालों का ही अभाव है। इसके अतिरिक्त नाटक कम्पनियां भी कुछ थोड़ी नहीं है।

पर इन सब का गाना बारह श्रुतियों पर होता है! कहिये हमारे संगीत शास्त्र में हमारे गवैयों की कहांतक पहुंच है? भारतीय गान-विद्या में बाईस श्रुतियों से युक्त राग-रागनियों की रचना की ही विशेषता है! भारतवर्ष के सिवा किसी अन्य देश में आपको राग-रागिनियों का पता न मिलेगा! हमारे शास्त्रकारों ने दिन को चौबीस घन्टों में विभक्त कर, किस समय कौन राग गाना उचित है, यह बता दिया है! उन्होंने ऊषाःकाल, प्रातःकाल, मध्यान्हःकाल सायंकाल, उत्तर रात्रि आदि समयों में, कौन-कौन (स्वरों) श्रुतियों का नवरस-युक्त परिणाम मानवप्राणियों के हृदय पर अंकित होगा,इसे दृष्टि में रखकर राग-रागनियों की रचना की है! हर एक का नाम भी अलग रक्खा है! रागशब्द की व्याख्या शास्त्रकारों ने इस प्रकार की है—

"स्वरवर्ण भूषितो यो ध्वनिभेदोरंजकः सराग इह"!

भारतवर्ष को छोड़ अन्य सब देशों में बारह श्रुतियों में ही गाना हुआ करताहै! यह पाश्चात्य प्रणाली है! परन्तु इस प्रथा को भारतियों ने अपना लिया है! लगभग पौनसौ वर्ष पहिले से पाश्चात्य हार्मोनियम बाजे को हम लोगों ने अपना लिया है! और सच यह है कि तभी से हम अपनी बाईस श्रुतियों को धीरे-धीरे भूलगये! कहिए हमारी गान कला की उन्नति होरही है या अवनति? क्या भारतीय सुशिक्षित समाज अपना कर्तव्य पालन कर इस ओर ध्यान देगा? हारमोनियम बाजे के स्वरों की रचना अंग्रेजी प्रणाली पर हुई है! देवल जी ने हिंदी म्यूज़िकल स्केल ऐन्ड ट्वेन्टी टू श्रुतीज़ पुस्तक में भारतीय म्यूज़िकल स्केल और योरपियन म्यूज़िकल स्केल का स्पष्टीकरण इस प्रकार लिया है।

That there are two kind of tones—the tones of the natural scale and those of the tempered scale. According to Blaserna the vibrations of these notes are as follows:—

(Natural Scale or Just Major)

C	D	E.	F.	G	A	B	C
240	270	300	320	360	405	450	480
स	रे	ग	म	प	ध	नि	सां

(Tempered Scale)

C	D	E	F	G	A	B	C
240	269$\frac{2}{5}$	302$\frac{2}{5}$	320$\frac{2}{5}$	359$\frac{3}{5}$	403$\frac{3}{5}$	453	480
स	रे	ग	म	प	ध	नि	सा

भारतीय गान-विद्या में मुख्य सप्त स्वर माने हैं ! यथा स – रे – ग – म – प – ध – नी इनके सम्पूर्ण नाम हैं.–षडज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत,निषाद, योरपियन संगीत शास्त्र में सप्तस्वरों के नाम दो प्रकार के होते हैं—डो, रे, मी, फा, सोल, ला, सी इनको टोनिक सोल्फा और सी, डी, ई, एफ, ए, बी, इनको ओल्डनेशन कहते हैं डो, रे–मी इत्यादि नामों की प्रथा का अब लोप होगया है।

प्रचिलित नाम सी, डी–ई, इत्यादि प्रचार में हैं ! योरपियन लोग टेम्पर्ड स्केल का उपयोग करते हैं, और भारतीय लोग नेचरल स्केल का ! ऊपर दोनों तालिकाओं का निरीक्षण करने से विद्वानों को यह भली भांति विदित होजायगा कि भारतीय और योरपियन सप्तस्वरों के स्थान भिन्न-भिन्न हैं,टेम्पर्ड स्केल के हिसाब से ही हारमोनियम बाजे के स्वरों की रचना हुई है। भारतवर्ष में आजकल भी ऐसे गवैयों के वंश हैं,जिन्हें वंश पर परागत गान–विद्या की शिक्षा गुरू द्वारा ही मिली है ! और जिन्होंने अपना जीवन गान-विद्या के अध्ययन अध्यापन में ही बिताया है ! गान–विद्या के आचार्य रहमतखॉं साहब, प्रसिद्ध वीनकार बन्दे अलीखॉं साहब, स्वो० चुन्ना, बड़ौदा सरकार के दरबारी रत्न मौलाबख्श, कोल्हापूर-दरबार के मियॉं अल्लादियाखॉं, मियॉं हैदरबख्श, अंतोबासावले, पंडित पलुस्कर के गुरू बालकृष्ण बुआईचल करंजीकर, भैया साहब जोशी, फैजमुहम्मदखॉं साहब (बड़ौदा) इनके पट्टशिष्य भास्कर बूआबखले, मिरज के पंडित गोखले-बन्धु, नासरखॉं, इनके शिष्य विष्णुपन्त जोशी, मैसूर दरबार के शेषण्णा, निजाम दरबार के इनायतहुसैन,तानरसखॉं,और छब्बूखॉं, ग्वालियर-दरबार के इमदादखॉं इन्दौर दरबार के मुरादखॉं वीनकार, पूने के प्रो० अब्दुलकरीम, प्रो० विष्णुपन्त छत्रे (रहमतखॉं के गुरुभाई) इत्यादि ऐसे ही हैं! इनके अतिरिक्त भी बहुत से गवैये होगए हैं ! ये सब गान-विद्या विशारद बाईस श्रुतियों के अनुसार गाते-बजाते थे ! इन्होंने आजन्म कभी हारमोनियम बाजा नहीं बजाया। इन लोगों का यह कथन है कि हारमोनियम अपूर्ण बाजा है। इसमें बहुत से स्वर है ही नहीं और जो हैं वे भी अशुद्ध ! यहांतक कहते हैं कि यदि वे हारमोनियम के साथ गावें, तो उनका स्वर ही अपस्वर (बेसुरा) होजायगा ! तंबूरा, सारंगी, फिडल इत्यादि तन्तुवाद्य सम्पूर्ण होते हैं ! देवलजी ने भारतीय गान-विद्या के अनुसार २२ श्रुतियों का इस प्रकार विवेचन किया है ! परन्तु इसके पहिले यह बतादेने की आवश्यकता है कि गान-विद्या के अनुसार स्वर कितने प्रकार के होते हैं, जिनसे राग-रागिनियाँ बनती हैं। भारतीय शास्त्रकारों ने स्वर की व्याख्या इस प्रकार की है :—

आत्मा मनो मनो वह्निं वह्निः प्रेरयते क्रमात् ।

मारुतं मारुतो ब्रह्म ग्रंथीस्त्वर्द्धपथेचरन् ॥

हमारे यहाँ स्वर के प्रकार ये हैं । शुद्ध कोमल, अति-कोमल, तीव्र, तीव्र-तर योरोपियन संगीत में नेचरल, फ्लैट, शार्प बस इतने ही स्वर हैं ! गाते समय कौन स्वर अपने स्थान पर है, अथवा नहीं ? इसे ग्रहण करने वाली इन्द्रिय केवल श्रोत्र हैं । बाजों में अलगोजा, बाँसुरी, शहनाई इत्यादि सुषिर बाजे छोड़ कर सरोद, सारंगी, फ़िडल ये अन्ध बाजे होते हैं । कारण, इनमें बिना किसी ऊपरी सहायता के, तत्काल ही स्वरों की सृष्टी करनी पड़ती है । दूसरे बाजे व्यक्त हैं अर्थात् उनमें हर एक स्वर स्थापित करने के लिये पर्दे रक्खे गये हैं, जैसे सितार इत्यादि । इस दृष्टि से देखा जाय तो सितार इत्यादि बाजे भी हारमोनियम की श्रेणी में ही गणना करने योग्य हो जाते हैं । भेद है तो केवल इतना ही है कि हारमोनियम के स्वरों में कोई स्थानांतर किया ही नहीं जा सकता; पर सितार में स्वरों का स्थान नियत होने पर भी वे इच्छानुसार कम या अधिक किये जा सकते हैं । यह बात तो हुई बारह श्रुतियों की । पर सितार इत्यादि की विशेषता यह है कि मींड़–माँड़ अथवा (खींच खाँच) करने से उन्हीं बारह पर्दों में २२ श्रुतियाँ बखूबी बोल सकती हैं । यह बात हारमोनियम में नहीं है । यद्यपि तन्तु वाद्य (सितार, सारंगी इत्यादि) में यह विशेषता अवश्य है । तथापि, इनमें भी शुद्धाशुद्ध स्वरों की पहिचान केवल कर्णेन्द्रिय के आधीन है और यही उसका अन्तिम प्रमाणिक आधार है। अतएव यह अत्यन्त परिश्रम तथा अभ्यास का काम है । कुछ लोगों का सुरीलापन स्वाभाविक होता है । पर ऐसे लोग इने गिने ही होते हैं । हारमोनियम की सहायता से १२ श्रुतियाँ पहिचानने वालों की संख्या आज कल बढ़ी चढ़ी है । पर शेष श्रुतियों के जानने वाले उँगलियों पर गिने जा सकते हैं । इसका कारण यहीहै कि अपूर्ण १२ श्रुतियाँ व्यक्त करने वाले हारमोनियम का प्रचार भारत में आज कल घर-घर होगया है । परन्तु पूर्ण श्रुतियाँ व्यक्त करने वाले दूसरे किसी बाजे का उतना प्रचार नहीं रहा । योग्य संगीतज्ञ गुरु के मुख से इस कला का ज्ञान प्राप्त करने की प्रणाली उठ-सी गई है । बिना परिश्रम किये ही गवैये, बजैये बन बैठने की प्रणाली बढ़ती जा रही है । आधुनिक अपूर्ण संगीत–विषयक पुस्तकों के अध्ययन से ही लोग आज कल अपने को संगीताचार्य (प्रोफ़ेसर ऑफ़ म्यूज़िक) मानने लगते हैं । इन पुस्तकों में प्रत्येक लेखक की स्वर–लिपि (नोटेशन) जुदी–जुदी है, सो भी अपूर्ण । केवल इनके देख लेने से काम नहीं चल सकता । अनेक कारणों से शेष स्वरों का ज्ञान धीरे–धीरे लोप होता जा रहा है । देवल जी ने भारतीय संगीत–शास्त्रानुसार बनाई हुई बाईस श्रुतियों की तालिका इस प्रकार दी है ।

संख्या	श्रुतियों के नाम	नाद-लहरें हायव्रेशस	कोमल, तीव्र	स्वर नाम
१	छुदोवती मध्या	२४०	शुद्ध	सा
२	दयावती करुणा	२५२	अति कोमल	री
३	रंजनी मध्या	२५६	कोमल	री
४	रतिका मृदु	२६६ २/३	मध्य	री
५	रौद्री दीप्ता	२७०	तीव्र	री
६	क्रोधा आयता	२८४ ४/९	अति कोमल	गा
७	वज्रिका दीप्ता	२८८	कोमल	गा
८	प्रसारिणी आयता	३००	तीव्र	गा
९	प्रीति मृदु	३०३ ३/४	तीव्र तर	गा
१०	मार्जनी मध्या	३१५	अति कोमल	मा
११	क्षिति मृदु	३२०	कोमल	मा
१२	रक्ता मध्या	३३७ १/२	तीव्र	मा
१३	संदीपनी आयता	३४१ १/३	तीव्र तर	मा
१४	अलापिनी करुणा	३६०	शुद्ध	पा
१५	मदंती करुणा	३७८	अति कोमल	धा
१६	रोहिणी आयता	३८४	कोमल	धा
१७	रम्या मध्या	४००	मध्य	धा
१८	उग्रा दीप्ता	४०५	तीव्र	धा
१९	क्षोभिनी मध्या	४२६ २/३	अति कोमल	नी
२०	तीव्रा दीप्ता	४३२	कोमल	नी
२१	कुमुद्वती	४५०	तीव्र	नी
२२	मन्दा मृदु	४५५ ५/९	तीव्र तर	नी
२३	छुदोवती (ऊपर की)	४८०	दूसरे सप्तक में की	सा

जिनका आज कल प्रचार है, वे बारह श्रुतियां यह हैं।

संख्या	श्रुतियों के नाम	नाद लहरें	कोमल, तीव्र	स्वर नाम
१	छन्दोवती	२४०	शुद्ध	सा
२	रजनी	२५६	कोमल	री
३	रौद्री	२७०	तीव्र	री
४	वज्रिका	२८८	कोमल	गा
५	प्रसारिणी	३००	तीव्र	गा
६	क्षिति	३२०	कोमल	मा
७	रक्ता	३३७½	तीव्र	मा
८	अलापिनी	३६०	शुद्ध	पा
९	रोहिणी	३८४	कोमल	धा
१०	उग्रा	४०५	तीव्र	धा
११	तीव्रा-दीप्ता	४३२	कोमल	नी
१२	कुमुद्वती	४५०	तीव्र	नी
१३	छन्दोवती	४८०	(दूसरे सप्तक का)	सां

इन १२ स्वरों में ही आज कल के गाने बजाने वाले सब राग-रागिनियां गाते बजाते हैं। इससे पता चल सकता है कि हमारी संगीत--कला किस गिरी हुई दशा में है। इसका यह अर्थ नहीं कि उक्त २२ स्वरों को गाने बजाने वाला कोई भारत में है ही नहीं। हैं पर बहुत कम। इन २२ स्वरों में से १० स्वरों के लुप्तप्राय हो जाने से राग-रागिनियों का स्वरूप कैसा विकृत हो गया है; यह निम्न -लिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

(१) टोड़ी, काफी, और भीमपलासी, रागिनियों में कोमल गन्धार का प्रयोग होता है। पर यही गंधार श्रुति भेद से उपर्युक्त तीनों रागिनियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। परन्तु आज कल इन तीनों में एक ही गंधार का उपयोग किया

जाता है। टोड़ी-राग का शास्त्रोक्त गंधार २८४ नाद लहरों का होता है, परन्तु इस रागिनी में आज कल २८८ नाद लहरों के गंधार का उपयोग होता है। हारमोनियम के कोमल गधार से इसकी परीक्षा भली भांति हो सकती है।

(२) आसावरी का ऋषभ और ईमन, शंकराभरण, और भूप इन रागों का ऋषभ एक सा ही गाया बजाया जाता है। आसावरी का ऋषभ २६६ नाद लहरों का होता है, पर २६० वाले ऋषभ का ही प्रयोग किया जाता है।

(३) भैरव पूर्वी और परज का धैवत एक सरीखा ही गाया बजाया जाता है। भैरव राग का धैवत ३७८ नाद-लहरों का होना चाहिये, पर गाते हैं ३८४ नादलहरों का धैवत।

(४) ईमन और भूप का गंधार भी एक सरीखा गाया बजाया जाता है, पर ईमन का गधार अलग ३०० नाद-लहरों का और भूप का ३०३ का

ये तो मामूली रागों के उदाहरण हैं। परन्तु कन्द्राहारी, गोरखहारी, डागारी नोहारी, मुखारी, हंसध्वनि, करहरप्रिया, इत्यादि अनेक राग अच्छे-अच्छे गवैये गाते हैं (इनकी संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है) और इनमें जो श्रुतियां लगती हैं वे १२ श्रुतियों में नहीं मिलतीं। भारतीय संगीत-साहित्यज्ञों ने यदि अभी से शास्त्र के मूल तत्वानुसार उत्साह पूर्वक इस प्रणाली का प्रचार न किया, तो भारतीय गान-विद्या की विशेषता एवं स्वतन्त्रता भविष्य में उठ जानेकी पूर्ण सम्भावना है। आज कल भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में हिन्दी, मराठी, गुजराती, तेलगू कानड़ी इत्यादि भाषाओं में गाने की स्वर-लिपि (नोटेशन) ग्रन्थों में प्रसिद्ध कर द्रव्य कमाने का धन्धा खूब जोर से जारी है। ऐसे समय इस छोटे निबन्ध द्वारा जनता जर्नादन का ध्यान स्वर-लिपि (नोटेशन) की ओर खींचने का प्रयत्न यद्यपि अशक्य है, तथापि भविष्य में कुछ लिखने का प्रयत्न करूंगा। इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस अमेरिका, जापान, आदि सभी पाश्चात्य या प्राच्य स्वतन्त्र राष्ट्रों की संगीत नोटेशन पद्धति एक ही है, इसलिये इसको युनिवर्सल स्टाफ नोटेशन कहते हैं। जिस प्रकार भारत की भाषा एक होनी चाहिये उसी प्रकार गान विद्या की स्वर-लिपि भी एक सी होनी चाहिये इसलिये हिन्दी के सुशिक्षित संगीत-साहित्यज्ञ पंडितों से प्रार्थना है कि प्रयत्नकरके किसी भी विद्या के मूल तत्व ज्ञान प्राप्त किये विना अध्ययन और अध्यापन का मार्ग सुलभ न समझें। सुशिक्षित पण्डितों द्वारा भारतीय गान-विद्या के मूल तत्वोंका अभ्यास किये विना वर्तमान मासिक पत्रों में गान-विद्या सबंधी टूटे-फूटे लेख लिखना और भारतीय गाने के अपूर्ण नोटेशन लिखने की प्रणाली कभी बन्द न होगी। गाने का नोटेशन लिखने का विषय पाश्चात्यों का है। इस विषय में भारतवासी लोग पाश्चात्यों का अनुकरण कर रहे हैं। यह विषय पूर्ण रीति से समझने के लिये यूनिवर्सल स्टाफ नोटेशन का ही अभ्यास करना आवश्यक है।

इँगलिश नोटेशन-पद्धति का रूप कैसा है? वह पद्धति अपनी भारतीय गान विद्या के लिये लाभदायक होगी या नहीं, नोटेशन कैसा लिखना चाहिये, नोटेशन से गीत और वाद्य की कला सीखने वाले जिज्ञासु को कुछ लाभ होगा या नहीं? इत्यादि विषयों का वहिरंग विवेचन करने की जैसी आवश्यकता है, वैसी ही भारतीय गान-विद्या के अंतरंग के विषयों का विवेचन करना भी ज़रूरी है। अंतरंग विषय की रूप-रेखा इस प्रकार है:—नोटेशन लिखने के लिये स्वर, ताल, मात्रा, लय (मोशन), सप्तकों का दिग्दर्शन अर्थात् कौनसा स्वर कौनसे सप्तक का होता है, प्रत्येक स्वर की समय की बनावट, संक्षिप्त तान, प्रसरणशील तान (दो, तीन, चार आवृति की तान) मींड़, मुरकी, खटके, मृदु और कठोर स्वर कैसे दिखलाना, विश्राम, ½, ¼, ⅙, मात्रा के स्वर कैसे दिखलाना, कोमल तीव्र आदि स्वर कैसे बताला भाषा और कवित्व शास्त्र के नियम—जो नोटेशन के लिये काम आते हैं वे बतलाना इन सब अंतरंग के विषयों के नोटेशन की ज़रूरत होती है। उल्लिखित वर्णन से पाठक गण यह कल्पना कर सकेंगे कि भारतीय गान-विद्या के नोटेशन लिखने का विषय कितना गहन है। ऐसे महत्व के विषय का प्रतिपादन करने के लिये दूसरा निबंध लिखने की आवश्यकता है। यदि लोग मेरे इस लेख को पसन्द करेंगे तो मैं फिर गान-विद्या की स्वर संकेत चिह्न लिपि पर दूसरा लेख लिखूँगा। इस लेख को उस लेख की प्रस्तावना-मात्र समझना चाहिये।

—श्री० महादेव रामचन्द्र खण्डकर।

"क्या कहूं"

तुमको प्रभु कृष्ण कन्हैया कहूँ, या माधव मुरली वजैया कहूँ?
बलराम सहोदर भैया कहूँ, सुरभीन के नाथ चरैया कहूँ?
गिरधारी कहूँ बनवारी कहूँ, अघहारी कहूँ या मुरारी कहूँ?
नदलाल कहूँ प्रतिपाल कहूँ, किरपाल कहूँ या विहारी कहूँ?
घनश्याम कहूँ, सियाराम कहूँ, हरीराम कहूँ भयहारी कहूँ?
जगदीश कहूँ सुरईश कहूँ, वृजधीश कहूँ या खरारी कहूँ?
अजशेष कहूँ या रमेश कहूँ, अवधेश या सिंधु मथैया कहूँ?
बलराम सहोदर भैया कहूँ, सुरभीन के नाथ चरैया कहूँ?
वृजचन्द्र कहूँ रघुनन्द कहूँ, परमानद करुणा कन्द कहूँ?
दयासिंधु कहूँ दीनबन्धु कहूँ, प्रभु आनदकंद मुकन्द कहूँ?
यदुनन्द कहूँ कृष्णचन्द्र कहूँ, नारायण या गोविन्द कहूँ?
नदनन्द कहूँ रामचन्द्र कहूँ, पुरुषोत्तम सच्चिदानन्द कहूँ?
'रमाबन्धु' के नैया खिवैया कहूँ, भवसिंधु से पार लगैया कहूँ?

(ले० श्री० रामसहाय मिस्त्री, रमाबन्धु)।

ध्रुपद के ३० काम

रागिनी अल्हैया बिलावल में

स्वरकार—

मास्टर—ए० सी० पाडेय Mus M, गायनाचार्य F S M. (London)
B C D (Sheffield) प्रिन्सिपल मैट्रोपौलीटन म्यूजिक कालेज

श्री पाडेय जी ने बड़े परिश्रम से ध्रुपद के ३० काम खास तौर पर इस विशेपाक के लिये तैयार करके भेजे हैं। इस अंक में स्थायी के ३० काम दिये जाते हैं, अन्तरा आगामी अंकों में दिये जांयगे। इस स्वरलिपि की बन्दिश बड़ी सुन्दर है। तैयार होने पर पाठकों के पास यह ऊँचे दर्जे की चीज हो जायगी।

स्थायी—हे गोविंद राखो शरन, अब तो जीवन हारे। ध्रु०।

अन्तरा—नीर पीवन हेत गयो, सिंधु के किनारे।
सिंधु बीच बसत ग्राह, चरन धरी पछारे॥
चार पहर जुद्ध भयो, ले गयो मझधारे।
नाक कान डूबन लागे, नाथ को पुकारे॥

स्थायी—(विलम्बित लय)

+		०		२		०		३		४	
सं	–	सं	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	खो	ऽ	श
ग	म	र	स	ग	–प	–	ध	धन	पधन	–धन	संरं
र	न	अ	ब	तो	ऽजी	ऽ	व	नऽ	हाऽऽ	ऽरेऽ	ऽऽ

श्रीयुत ए०सी०पांडेय Mus. M. गायनाचार्य F. S. M.(London)
B. C. D. (Sheffield) प्रिन्सिपल मैट्रापोलीटन म्यूज़िक कालेज।

श्री पाण्डेय जी की स्वरलिपियां बड़ी महत्व पूर्ण होती हैं, अभी हाल में ही आप सङ्गीत प्रचार हेतु विदेश भ्रमण करके आये हैं, अपनी इस सगीत यात्रा का वर्णन आपने "संगीत" में प्रकाशित कराने का विचार प्रकट किया है। इस अङ्क में आपकी महत्वपूर्ण स्वरलिपि "ध्रुपद के २० काम" पृष्ठ २६ पर देखिये।

अन्तरा—(विलम्बित लय)

+		०		२		०		३		४	
प	–	न	सं	रं	रं	न	सं	गं	मं	गं	रं
नी	ऽ	र	पी	व	न	हे	ऽ	त	ग	यो	ऽ
गं	रं	गं	रं	सं	न	सं	न	ध	न̲	ध	प
सिं	ऽ	धु	ऽ	के	ऽ	कि	ऽ	ना	ऽ	रे	ऽ
ग	–	ग	गम	पम	ग	म	र	स	ऩ	–	स
सिं	ऽ	धु	बीऽ	ऽऽ	च	ब	स	त	आ	ऽ	ह
ग	–	प	प	ध	न̲	ध	प	पधन	संरंसं	नधन̲	धप–
च	ऽ	र	न	ध	री	ऽ	प	छाऽऽ	ऽऽरे	ऽऽऽ	ऽऽऽ
ग	–	प	प	ध	न̲	ध	प	पधन	संरंसं	नधन̲	धप–
च	ऽ	र	न	ध	री	ऽ	प	छाऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽऽ	रेऽऽ
ग	–	ग	प	न	न	सं	सं	सं	–रं	न	सं
चा	ऽ	र	प्र	ह	र	जु	ऽ	द्ध	ऽभ	यो	ऽ
न	–	न	सं	–	न̲	–	ध	ग	प	म	ग
ले	ऽ	ग	यो	ऽ	म	ऽ	झ	धा	ऽ	ऽ	रे
सा	–	ग	म	–	ग	प	नन	सं	–	सं	–
ना	ऽ	क	का	ऽ	न	डू	बन	ला	ऽ	गे	ऽ

प	–	न	सं	–	स	पन	संरं	ध	न	ध	प
ना	ऽ	थ	को	ऽ	पु	काऽ	ऽऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ

(२) स्थायी—दुगन(सम से)

+		०		२		०		३		४	
सं–	संरं	नध	पध	नध	पम	गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसरं
हेऽ	गोऽ	विंऽ	दरा	ऽख	ऽश	रन	श्रव	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ	रेऽऽऽ

(३) दुगन–तिया (सम से)

सं–	संरं	नध	पध	नध	पम	गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसंरं
हेऽ	गोऽ	विंऽ	दरा	ऽख	ऽश	रन	श्रव	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ	रेऽऽऽ
मगम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसरं	गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसंरं
शरन	श्रव	तोऽजी	ऽव	नऽहाऽ	रेऽशऽ	रन	श्रव	तोऽज	ऽव	नऽहाऽ	रेऽऽऽ

(४) चौगुन (सम से)

+		०		२		०	
स–संर	नधपध	नधपम	गमरस	ग–प–ध	पधनसं	सं–संरं	नधपध
हेऽगोऽ	विंऽद्दरा	ऽखऽश	रनश्रव	तोऽजीऽव	नहारेऽ	हेऽगोऽ	विंऽद्दरा
३		४					
नधपम	गमरस	ग–प–ध	पधनस				
ऽखऽश	रनश्रव	तोऽजीऽव	नहारेऽ				

(५) चौगुन–तिया (सम से)

×		०		२		०	
सं–संरं	नधपध	नधपम	गमरस	ग–प–ध	पधनस	मगमरस	ग–प–ध
हेऽगोऽ	विंऽद्दरा	खऽश	रनश्रव	तोऽजीऽव	नहारेऽ	शरनश्रव	तोऽजीऽव

३	४
पधनसं र गमरस	ग-प-ध पधनसं
नहारेऽश रनश्रब	तोऽजीऽव नहारेऽ

(६) अठगुन (खाली से)

०		३		४	
सं-संरंनधपध	नधपमगमरस	ग-प-धपधनसं	सं-संरंनधपध	नधपमगमरस	ग-प-धपधनसं
हेऽगोऽविंऽद्रा	ऽखऽशरनश्रब	तोऽजीऽवनहाऽरे	हेऽगोऽविंऽद्रा	ऽखऽशरनश्रब	तोऽजीऽवनहाऽरे

(७) आड़ ठांय (तीसरी ताली से)

३		४		+		०		२		०	
सं-	सं	रंन	ध	पध	न	धप	म	गम	र	सग	-प
हेऽ	गो	ऽविं	ऽ	द्रा	ऽ	खऽ	श	रन	श्र	वतो	ऽजी

३			
-धध	पधन	धन	संरं
ऽवन	हाऽऽ	रेऽ	ऽऽ

(८) आड़ दुगन (सम से उठान)

+		०		२	
				३	४
सं-सं रंनध	पधन धपधन	सं-सं रंनध	पधन धपम	गमर सग-प	-धधपधन धनसंरं
हेऽगो ऽविं	द्राऽ खऽऽऽ	हेऽगो ऽविंऽ	द्राऽ खऽश	रनश्र बतोऽजी	ऽवनहाऽऽ रऽऽऽ

९-आड़ चौगुन [खाली से]

०	३	४
सं-संरंनध पधनधपधन	सं-संरंनध पधनधपम	गमरसग-प -धपधनधनसंरं
हेऽगोऽविंऽ द्राऽऽखऽऽ	हेऽगोऽविंऽ द्राऽखऽश	रनश्रबतोऽजी ऽवनहाऽरेऽऽऽ

१०—आड़ चौगुन-तीया

+		०	
सं-सरनध	पधनधपधन	सं-संरनध	पधनधपम
हेऽगोऽविंऽ	दराऽऽखऽऽ	हेऽगोऽविंऽ	दराऽखऽश
२		०	
गमधनधप	म-ग-म-	र-सग-प	-धपधनधनसंरं
रनराऽखऽ	शऽरऽनऽ	अऽवतोऽजी	ऽवनहाऽरऽऽऽ
३		४	
रसग-प-	धपधनधम	गमरसाग-प	-धपधनधनसंरं
अवतोऽजीऽ	वनहाऽरेश	रनअवतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

११—ठाय—दुगुन—चौगुन।

+		०		२		०		३		४	
सं	-	सं	र	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ	श

गम	रस	ग-प	-ध	धपधन धनसरं		सं-संरं	नधपध
रन	अव	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ रेऽऽ		हेऽगोऽ	विंऽदरा

३		४	
नधपम	गमरस	ग-प-ध	धपधनधनसरं
ऽखऽश	रनअव	तोऽजीऽव	नहाऽऽरेऽऽऽ

१२—ठांय दुगुन चौगुन तीया

+		०		२		०		३		४	
सं	-	सं	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	वि	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ	श
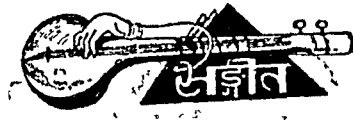
+		०		२	
गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसंरं
रन	अब	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ	रेऽऽऽ

०		३		४	
सं–संरंनध	पधनधपम	गमधनधप	म–ग–म–	र–सग–प	–धपधनधनसंरं
हेऽगोऽविंऽ	दराऽखऽश	रनराऽखऽ	शऽरऽनऽ	अऽबतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

×		०	
सं–संरंनध	पधनधपधन	सं–संरंनध	पधनधपम
हेऽगोऽविंऽ	दराऽऽखऽऽ	हेऽगोऽविंऽ	दराऽखऽश

२		०	
गमधनधप	म–ग–म–	र–सग–प	–धपधनधनसंरं
रनराऽखऽ	.शऽरऽनऽ	अऽबतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

३		४	
रसग–प–	धपधनधम	गमरसग–प	–धपधनधनसंरं
अबतोऽजीऽ	वनहाऽरेश	रनअबतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

१३–ठाय दुगन आड़की दुगन से समाप्ती

४		×		०		२		०		३	
सं	–	सं	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ	श

४		×		०		२	
गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसंरं	सं–सं	रंनध
रन	अब	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ	रेऽऽऽ	हेऽगो	ऽविंऽ

०		३		४	
पधन	धपम	गमर	सग–प	–धधपधन	धनसंरं
दराऽ	खऽश	रनअ	बतोऽजी	ऽवनहाऽऽ	रेऽऽऽ

१४—ठाय दुगन आड़की चौगुन से समाप्ती

०		२		०		३		४		×	
सं	—	सं	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ	श

०		२		०		२		
गम	रस	ग-प	-ध	धपधन	धनसरं	सं-संरंनध		पधनधपम
रन	अव	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ	रेऽऽऽ	हेऽगोऽविंऽ		दराऽखऽश

४	
गमरसग-प	-धधपधनधनसंरं
रनअवतोऽजी	ऽधनहाऽऽरेऽऽऽ

१५—अतीत ठाय

४		×		०		२		०		३	
संरं	स	—	सं	र	न	ध	प	ध	न	ध	प
ऽऽ	हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ

४		×		०		२		०			
म	ग	म	र	स	ग	-प	—	ध	धन	पधन	-धन
श	र	न	अ	व	तो	ऽजी	ऽ	व	नऽ	हाऽऽ	ऽरेऽ

४	
संरं	सं
ऽऽ	हे

१६—अतीत दुगन

×		०		२		०		३		४	
-सं	रन	धप	धन	धप	मग	मर	सग	-प-	वधन	पधन-धन	सरसं
ऽगों	ऽविं	ऽद	राऽ	खऽ	शर	नअ	वतो	ऽजीऽ	वनऽ	हाऽऽऽरेऽ	ऽऽहे

१७—अतीत चौगुन

×		०		२		०	
संरंन	धपधन	धपमग	मरसग	म–गम	रसग–	धनधप	ममगमध
ऽगोऽविं	ऽद्राऽ	खऽशर	नश्रबतो	शऽरन	श्रबतोऽ	राऽखऽ	शऽरनरा

३		४	
धपमग	मरसग	–प–धधन	पधन–धन–संरंसं
खऽशर	नश्रबतो	ऽजीऽवनऽ	हाऽऽऽरेऽऽऽहे

१८—अनागत ठांय

×		०		२		०		४		३	
संरं	सं	—	सं	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प
ऽऽ	हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ

म	ग	म	र	स	ग	–प	–	ध	धन	पधन	–धनसंरं
श	र	न	श्र	ब	तो	ऽजी	ऽ	व	नऽ	हाऽऽ	ऽरेऽऽऽ

१९—अनागत दुगुन

संरंसं	–सं	रंन	धप	धन	धप	मग	मर	सग	–प–	धधन	पधन -धनसंरं
ऽऽहे	ऽगो	ऽविं	ऽद	राऽ	खऽ	शर	नश्र	बतो	ऽजीऽ	वनऽ	हाऽऽऽरेऽऽऽ

२०—अनागत चौगुन

+		०		२	
संरंसं–सं	रंनधप	धनधप	मगमर	मगमर	धनधप
ऽऽहेऽगो	ऽविंऽद	राऽखऽ	शरनऽ	शरनऽ	राऽखऽ

०		३		४	
संरंसं–सं	रंनधप	धनधप	मगमर	सग–प–	धधनपधन–धनसरं
ऽऽहेऽगो	ऽविंऽद	राऽखऽ	शरनश्र	बतोऽजीऽ	वनऽहाऽऽऽरेऽऽऽ

२१–ठाय दुगुन आड़ दुगुन आड चौगुन

×		०		२		०		३		४	
सं	–	सं	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ	श

×		०		२		०	
गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसंरं	सं–सं	रंनध
रन	अव	तोऽजी	ऽध	नहाऽऽ	रेऽऽऽ	हेऽगो	ऽविंऽ

३		४	
पधन	धपम	गमरसाग–प	–धपधनधनसंरं
दराऽ	खऽश	रनअवतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

२२–ठांय–दुगुन–आड दुगुन–आड चौगुन तिया

३		४		×		०		२		०	
सं	–	स	रं	न	ध	प	ध	न	ध	प	म
हे	ऽ	गो	ऽ	विं	ऽ	द	रा	ऽ	ख	ऽ	श

३		४		×	
गम	रस	ग–प	–ध	धपधन	धनसरं
रन	अव	तोऽजी	ऽव	नहाऽऽ	रेऽऽऽ

०		२		०	
सं–सं	रंनध	पधन	धपम	गमरसग–प	–धपधनधनसंरं
हेऽगो	ऽविंऽ	दराऽ	खऽश	रनअवतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

३		४	
रसग–प–	धपधनधम	गमरसाग–प	–धपधनधनसंरं
अवतोऽजीऽ	वनहाऽरेश	रनअवतोऽजी	ऽवनहाऽरेऽऽऽ

२३—आड़ीलय ठाय (तीनताल में)

+				२			
सं-सं	रंनध	पधन	धपम	गमर	सग-प	-धधन	पधन-धनसंरं
हेऽगो	ऽविंऽ	द्राऽ	खऽश	रनभ्र	बतोऽजी	ऽवनऽ	हाऽऽऽरेऽऽऽ
०				३			
रसगप	-धधन	पधन-	धनसंरं	गमर	सग-प	-धधन	पधन-धनसंरं
अबतोजी	ऽवनऽ	हाऽऽऽ	रेऽऽश	रनभ्र	बतोऽजी	ऽवनऽ	हाऽऽऽरेऽऽऽ

२४—दुगुन तीन ताल में (खाली से)

०			
सं-संरंनध	पधनधपम	गमरसग-प	-धधनपधन-धनसंरं
हेऽगोऽविंऽ	द्राऽखऽश	रनभ्रबतोऽजी	ऽवनऽहाऽऽऽरेऽऽऽ
३			
रसगप-धधन	पधन-धनसंरं	गमरसग-प	-धधनपधन-धनसंरं
अबतोजीऽवनऽ	हाऽऽऽरेऽऽश	रनभ्रबतोऽजी	ऽवनऽहाऽऽऽरेऽऽऽ

२५—चौगुन त्रिताल में (तीसरी ताली से)

३	
सं-संरंनधपधनधपम	गमरसग-प-धधनपधन-धनसंरं
हेऽगोऽविंऽद्राऽखऽश	रनभ्रबतोऽजीऽवनऽहाऽऽऽरेऽऽऽ
रसगप-धधनपधन-धनसंरं	गमरसग-प-धधनपधन-धनसंरं
अबतोजीऽवनहाऽऽऽरेऽऽश	रनभ्रबतोऽजीऽवनऽहाऽऽऽरेऽऽऽ

२६—ध्रुपद में बोलतान (समसे)

+		०		२		०		३		४	
सं	-	सं	संरं	न	ध प	प ध	धन	नध	धप	पध	पम
हे	ऽ	गो	ऽऽ	विं	द	रा	खऽ	शऽ	रऽ	नऽ	अऽ

ध्रुपद की गायकी

(ले०—श्रीयुत राजनरायन सिंह, रूपचन्द्रपुर)

ध्रुपद की गायकी बहुत प्राचीन है। सबसे प्रथम भारतवर्ष में ध्रुपद की ही गायकी रही। प्रथम यह गायन पद्धति संस्कृत में ही रही। क्यों कि आज भी सामवेद के मन्त्र ध्रुपद पद्धति से ही पढ़े जाते हैं। यद्यपि उन मन्त्रों में राग व्यवस्था नहीं पाई जाती, फिर भी मन्त्र हाथ से काल गति नापते हुये पढ़े जाते हैं। शब्दों का ठहराव हाथ से सकेत देते हुये दिखाया जाता है। केवल अक्षर ज्ञान से ही "रोद्री" के मन्त्र नहीं पढ़े जा सकते हैं, बल्कि उनके उच्चारण की विधि अच्छे पंडितों से सीखनी पड़ती है।

मुसलमान बादशाहों के पहिले का समय ध्रुपद का समय कहा जा सकता है। जब भारत में मुसलमानों का आगमन हुआ, उनको वैदिक रीति से गायन सीखने तथा समझने में बड़ी कठिनाई पड़ी, अत उन लोगों ने अपने मन से गायन गाना प्रारम्भ किया और इस शब्द रूप को "ख्याल" का नाम दिया। ज्यों-ज्यों ख्याल की गायकी अधिक होती, ध्रुपद का सुनना कुछ नीरस सा प्रतीत होने लगा। जनता ने ख्याल को बड़े चाव से सुना और अपनाया।

तानसेन प्रभृति ध्रुपद की ही गायकी में प्रवीण रहे, क्यों कि उन लोगों की बनाई चीजें अब भी बहुत से गवैये गाया करते हैं। इसी प्रकार 'सदारंग' इत्यादि ख्याल के गवैये हो गये। ध्रुपद की गायकी में साहित्य तथा पिंगल की अवहेलना बहुत कम देखी गई है, किन्तु ख्याल में तो साहित्य एक दूसरे ही रूप में मिलता है। वह हिन्दी साहित्य में होते हुये भी बहुत भिन्न पाया जाता है। यहां तक कि बहुत सी ख्याल की चीजों का अर्थ ही नहीं मालुम होता।

ध्रुपद सभी तालों में पाया जाता है। परन्तु ध्रुपद नाम से चोताला ही समझने की भूल लोक प्रिय हो चली है। गुनिजन यह भूल समझते हैं। जन साधारण तो ध्रुपद को चौताला ही समझते हैं।

ध्रुपद की गायकी में तान नहीं ली जाती हैं। धुरपदियों ने रूढ़ि रूप को छोड़ा नहीं, और ख्याल में मिलने नहीं दिया। स्वर का स्वाभाविक रूप ही ध्रुपद में रक्खा। तान तो स्वर की कल्पना से निकलती है। ध्रुपद में अस्वाभाविक तान आने देने के ही कारण तानें नहीं ली जाती। और यही कारण है कि ख्याल के गायक ध्रुपद बहुत कम गाते हैं, क्यों कि स्वरों पर बल तथा गमक लगाने से तान अकारण निकल पड़ती है। और यदि तान लेकर न गावें तो विशेष आनन्द नहीं आता।

ध्रुपद गाने के प्रथम 'तोम' नोंम 'ताना, आदि शब्दों द्वारा राग रूप बांधा जाता है। स्वर विस्तार भी आलाप द्वारा होता है, फिर भी तान नहीं ली जाती। आलाप करने के पश्चात् गायन प्रारम्भ होता है। गायन के अन्दर लय का काम अधिक होताहै। तिहैया, आड़ी, कुवाड़ी, तथा द्रुत इत्यादि का तो ध्रुपद में बहुत काम होताहै।

आज समाज में ध्रुपद गाने का रिवाज बहुत कम हो गया है। यहां तक कि कान्फ्रेन्सों में जब ध्रुपद की गायकी प्रारम्भ होती है तो जनता में हास्यरस उमड़ पड़ता है, और श्रोताओं में एक बेचैनी सी प्रतीत होने लगती है।

यद्यपि आज दिन ध्रुपद की गायकी लोक प्रिय नहीं रहगई है, तब भी धुरपदिये खयाल, टप्पा, तथा ठुमरी के गायकों को हेय दृष्टि से देखते हैं, और गर्व के साथ कहते हैं कि हम तो ध्रुपद-धम्मार के गायक हैं।

भारतवर्ष में एक कहावत हैं कि "मर्द का गाना और ऊंट का बलबलाना" ज्ञात होता है कि यह किसी धुरपदिये की ही बनाई कहावत है। क्यों कि ध्रुपद भारतर्ष का मर्दाना गायन है।

राग-हिन्डोल

(स्वरकार श्रीयुत-श्रीकान्त ठाकुर "संगीत कलाधर")

चौताल मात्रा १२

स्थाई

१		०		३		०		३		४	
म॑ग	म॑ग	स	ऩ	स	ग	म	ध	न	सं	–	–
सं	न	ध	सं	न	ध	म॑ग	म॑ग	ग	म॑	ध	न

अन्तरा

म॑	ध	न	सं	–	गं	मं	–	गं	स	गं	सं
सं	न	ध	सं		ध	म॑ग	म॑ग	ग	म॑	ध	न

आरोह—स ग म॑ ध नी सां

अवरोह—सां नी ध म॑ ग सा

इसकी जाति औड़व है। म तीव्र, बाकी सब स्वर शुद्ध हैं। इसका बादी स्वर मध्यम और सम्वादी स्वर निषाद है। गाने का समय प्रभात का दूसरा प्रहर।

(एकाङ्की नाटक)

(लेखक—श्री० गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" आगर)

दृश्य प्रथम !

स्थान—हिमालय की उपत्यका] [समय—सूर्योदय ।

दृश्य—नारद का गाते हुए दिखाई पड़ना ।

नारद—

गाना

भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढमते ।

बालस्तावत्क्रीडा सक्तः । तरुणस्तवत्तरुणी रक्तः ॥

वृद्धस्तावश्चिन्तामग्नः । परेब्रह्मणिकोपिनलग्नः ॥ भज गोविन्दं ॥

(धीरे-धीरे एक-एक करके सिंह, मृग, सर्प, कोकिल, शुक, पिक का आना और नारद जी के सङ्गीत में तन्मय हो जाना ।)

वयसि गतेकः कामविकारः । शुष्केनीरेकः कासारः ॥

क्षीणेवित्तेकः परिवारो । ज्ञातेतत्वेकः संसारः ॥ भज गोविन्दं ॥

सङ्गीत शास्त्र का मैं कितना उद्भट ज्ञाता हूँ । मेरी सङ्गीत-स्वर-लहरी में कैसा गजब का आकर्षण है ! वन्य पशु पक्षी तक खिंच आए । गत द्वेष हो, सब सङ्गीतासव पान किए मेरी वीणा की झनकार में उन्मत्त झूम रहे हैं । योग के अतिरिक्त, यह महान् शक्ति सङ्गीत में ही है । मुझ में योग और सङ्गीत दोनों का सामञ्जस्य है । यह बात श्री० शङ्कर जी को छोड़ कर और किसी में नहीं पाई जाती । शङ्कर जी नाद-शास्त्र के आदि प्रणेता अवश्य हैं किन्तु वे भी मेरी समता नहीं कर सकते । मैं वीणा बजा कर, वायु मण्डल को कोमल स्वर-लहरी से निनादित कर देता हूँ, वे तो केवल डमरू की डिमडिम या इकतारे की टुनटुन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते, और बापरे बाप ! वह ताण्डव-नृत्य, अल्हड़पन से भरा ऊटपटांग नृत्य-!

"महीपादाघाताद् व्रजति सहसा संशय पदं ।"

नारायण, नारायण ! शङ्कर मेरी समता नहीं कर सकते । रहे ब्रह्मा और विष्णु ! वे सङ्गीत के मर्मज्ञ नहीं कहे जा सकते । आज त्रिलोक में मुझसा सङ्गीतज्ञ कोई नहीं है । अच्छा तो, अब कैलाशपति शङ्कर जी की सेवा में पहुँच कर अपनी सङ्गीत कला प्रदर्शित करूँ और उन्हें भी अपना नैपुण्य, तथा जौहर दिखाऊँ ।

"भज गोविन्द, भज गोविन्द"......गाते हुए जाना)

दृश्य द्वितीय !

स्थान—कैलास] [समय—सूर्योदय के बाद

दृश्य—शङ्कर पार्वती का बैठे दिखाई पड़ना !

पार्वती—नाथ ! कानों में मधुर सङ्गीत की ध्वनि कहां से आ रही है ? (ध्यान देकर) सङ्गीत क्या है ? मानो मादकता थपकी दे देकर सुला रही हो ! धन्य !

शङ्कर—प्रिये ! देवर्षि नारद जी के सङ्गीत में यही विशेषता है । उनके बराबर आज, तीनों लोकों में सङ्गीत विद्या का कोई पण्डित नहीं है । मैंने योगबल से जाना है वे यहीं आरहे हैं । परन्तु पार्वती ! उन्हें अपनी विद्या पर अभिमान हो आया है । अभिमान होने पर विद्या की उन्नति रुक जाती है, अतएव उनके हितार्थ मुझे उनका अभिमान नष्ट करने का प्रयत्न करना पड़ेगा । तुम देखना, मैं उन्हें कैसा बनाता हूँ ।

पार्वती—ध्वनि बहुत पास मालूम होती है । शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहे हैं ।

(नैपथ्य से गाते हुए नारद का प्रवेश)

नारद— **गाना**

भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते ।
जटिलोमुण्डी लुञ्चित केशः । काषायाम्बर बहुधृत वेशः ॥
पश्यन्नपिनच पश्यति लोक । उदर निमित्तं बहुकृत शोकः॥ भजगोविंदं ॥

नारायण, नारायण !

शङ्कर—आइए, देवर्षि पधारिए ! धन्य भाग्य जो आपने कैलास को अपनी चरण रेणु से पावन किया । कहिए कहां से पधार रहे हैं ?

नारद—भूतेश ! मैं मृत्युलोक की पुण्यभूमि से आ रहा हूँ । चिरकाल से आपके दर्शनों की लालसा थी ।

शङ्कर—हाँ, इधर तो आपने बहुत समय बाद कृपा की !

नारद—आता क्या ? मुझे सङ्गीत से ऐसा प्रेम हो गया इन दिनों इसी के अभ्यास में लगा रहा । आज आपकी कृपा से मैंने इसमें पूर्णता प्राप्त करली है । आप तो खैर, इस विद्या के उत्पादक ही हैं; किन्तु दूसरे की तो शक्ति नहीं जो इस सम्बन्ध में मुझसे टक्कर ले ।

शङ्कर—वास्तव में आप सङ्गीत में अद्वितीय हैं, अपूर्व हैं, अनुपम हैं। पार्वती तो आपकी स्वर लहरी के सङ्गीतोन्माद में कभी से झूम रही थी। आनन्दातिरेक मे उसकी आंखें झपी जा रही थीं।

नारद—आज्ञा हो तो कुछ सुनाऊँ ? रात दिन, खाते पीते, उठते बैठते, चलते फिरते मैं इसी मे लगा रहता हूँ। यह मेरी वीणा और मैं। नारद सङ्गीतमय हो गया है और सङ्गीत नारदमय !

शङ्कर—हाँ, कुछ सुनाइए। बड़ी अनुकम्पा होगी।

नारद—(वीणा की खूँटी मरोड़ कर स्वर ठीक करने के बाद)

गाना

नारायण, नारायण, नारायण।

खल दल गञ्जन, भव भय भञ्जन। असुर निकन्दन, जन मन रञ्जन॥

नारायण, नारायण, नारायण।

शंकर—धन्य देवर्षे धन्य ! सङ्गीत क्या है अमृत है। मैं तृप्त हुआ। आपके सङ्गीत से ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ। आपके समान आज त्रिलोकी में कोई नहीं है। मैं तो कहूँगा कि न भूतो न भविष्यति।

नारद—आपके अनुग्रह से राग-रागिनियां मेरे लिये एक सहज सुलभ खिलवार सा हो गया।

शंकर—क्यों न ! धन्य ! क्या आपने इन दिनों कभी विष्णुजी को भी सङ्गीत का रसास्वादन कराया है

नारद—नहीं ! आज सीधा यहां से वहीं जाने का विचार है।

शङ्कर—अवश्य पधारिये। वे सङ्गीत के बड़े प्रेमी हैं। लक्ष्मी जी तो उनसे भी अधिक शौकीन हैं। हम पर्वतवासी फक्कड़ों की अपेक्षा वे ऐश्वर्य सम्पन्न सङ्गीत के बड़े ग्राहक सिद्ध होंगे।

नारद—अच्छा तो चलूं ? विष्णुलोक पहुंचूं !

शङ्कर—कैसे निवेदन करूं ! (नारद जी उठकर चलना चाहते हैं, और सम्मानार्थ शङ्कर पार्वती खड़े होते हैं)

नारद—नारायण ! नारायण ! (भज गोविंदं-गाते हुये प्रस्थान)

दृश्य तृतीय !

स्थान-विष्णुलोक] [समय-दिन का प्रथम प्रहर

दृश्य-भव्य प्रासाद में के एक प्रांगण में विष्णु और लक्ष्मी का बैठे दिखाई पड़ना।

सङ्गीताचार्य श्री नारद जी का छाया चित्र
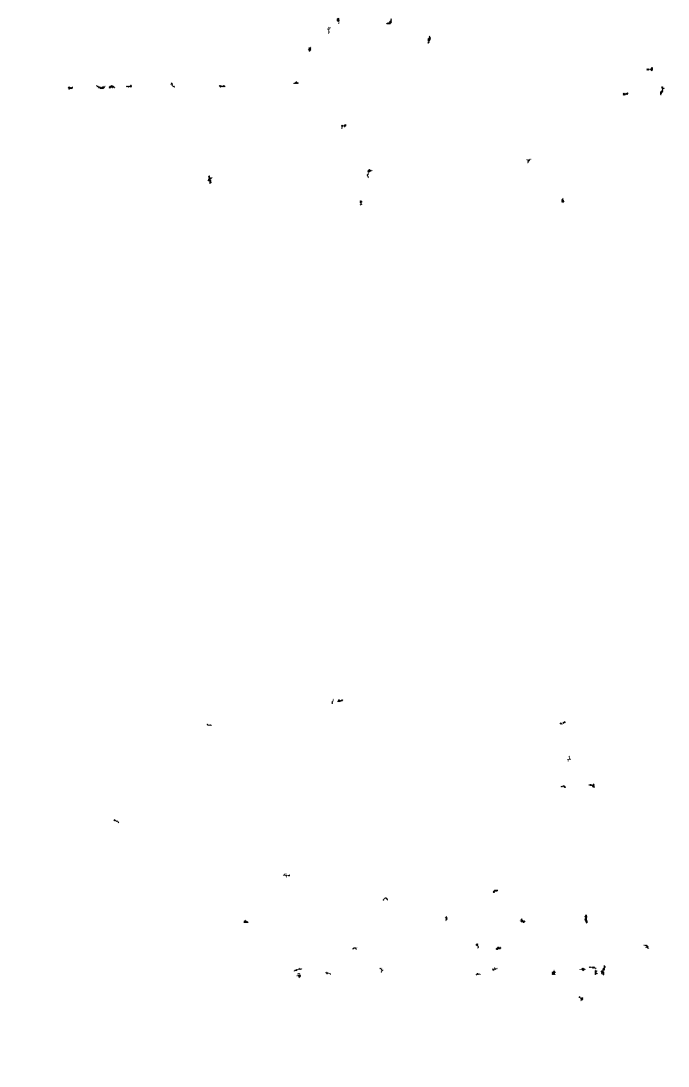
नारद—(नेपथ्य से)

गाना।

भजगोविन्दं, भजगोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़ मते ।
पुनरपिजननं पुनरपिमरणं। पुनरपिजननी जठरे शयनम् ॥
इह संसारे खल दुस्तारे। कृपया भारे पाहि मुरारे ॥ भजगोविंदं ॥

विष्णु—कमले ! देवर्षि नारद जी पधार रहे हैं। वे ही सङ्गीतामृत की मन्दाकिनी प्रवाहित करते आ रहे हैं ?

(नारद का प्रवेश ! लक्ष्मी और विष्णु का स्वागतार्थ उपस्थान)

विष्णु—पधारिये, महर्षे, पधारिये ! बहुत समय बाद सेवक की सुधि ली ! विराजिये।

(तीनों बैठते हैं। दो देव कन्याएं नारद जी पर चँवर हिलाती हैं)

नारद—जगन्निवास ! सङ्गीताभ्यास में तल्लीन होने के कारण मैं प्रभु के पादपद्मों का दर्शन न कर सका।

विष्णु—ओहो-आपने सङ्गीत का विशेष अभ्यास किया है ! पहले ही आपके समान त्रिलोकी में कोई न था, अब तो आपने विशेष परिश्रम कर उसे अद्भुत बना दिया होगा।

नारद—हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है, कहिये सेवा में कुछ निवेदन करू ?

विष्णु—हाँ, हाँ, अवश्य नेकी और पूछ-पूछ !

नारद—(वीणा को ठीक करके)

गाना।

भज गोविंदं, भज गोविंदं, गोविंदं भज मूढ़ मते !
गेयं गीता नाम सहस्रं ध्येयं श्रीपति रूप मजस्रं ।
केयंसज्जन निकटे चित्तं, देयं दीन जनायच वित्तं ॥ भजगोविंदं ॥

(गाते समय विष्णु का ताल देने लगना। गायन समाप्त होने पर)

विष्णु—धन्य नारद जी धन्य। मैं तो क्या, शेष जी भी आपकी प्रशंसा करने में असमर्थ हैं। शिवजी के इकतारे और डमरू पर भी मैंने गाना सुना है, ब्रह्माजी के मुख से साम-गान सुना है, परन्तु जो आनन्द आपके सङ्गीत से प्राप्त हुआ, उसका शतांश भी उनके द्वारा प्राप्त नहीं हो सका था।

लक्ष्मी—देवर्षि के सङ्गीत से चराचर मन्त्र मुग्ध से हो जाते हैं। अहा, इस विद्या में कितना बल है। कितना मोहन और कैसा अद्भुत आकर्षण है।

नारद—प्रभो ! मैं आत्मश्लाघा नहीं कर रहा हूँ, बल्कि सत्य कहता हूँ कि मैंने राग-रागिनियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। शङ्कर जी ने भी इस बात को स्वीकार किया है। उन्होंने कहा था-देवर्षे ! त्रिलोक में आपकी समता करने वाला मुझे नहीं दिखाई देता।

विष्णु—उन्होंने ठीक ही कहा है। नाद-शास्त्र के प्रणेता स्वयं शङ्कर जी भी आपकी वरावरी नहीं कर सकते। "गुरु जी तो गुड़ ही रहे चेला चीनी वन गये।"

नारद—अच्छा तो प्रभो! अव आज्ञा दीजिए। मैं केवल अपने सङ्गीत को सुनाने के निमित्त ही आया था। अव ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्मा जी को भी अपनी सङ्गीत-कला का कुछ नमूना दिखा आऊं! आज्ञा?

विष्णु—महर्षे! कालान्तर में तो दर्शन से कृतार्थ किया और फिर भी इतनी जल्दी? मुझे तो आपके साथ भूलोकस्थ पुण्य भूमि में भ्रमण करने की वहुत दिनों से इच्छा है। क्या आप मेरी इच्छा पूरी न करेंगे?

नारद—नाथ! मैं अभी ब्रह्मलोक से वापिस आता हूँ। आप तव तक तैयार रहिए। अपराह्न में यहां से चल कर हम पुण्यभूमि में भ्रमण कर सकेंगे।

विष्णु—अत्युत्तम! हो आइए। यथासम्भव शीघ्र आइए।

नारद—अच्छी वात है! नारायण, नारायण। (प्रस्थान)

विष्णु—(लक्ष्मी से) देखा! नारद को कितना अभिमान हो गया है। वे समझते हैं कि मेरे समान कोई दूसरा गायक एव सङ्गीतज्ञ इस ब्रह्माण्ड में है ही नहीं। परन्तु यह उनका भ्रम मात्र है। सङ्गीत एक अगाध सागर है, उसके पार जाना तो दूर की वात है, नारद जी अभी उसके किनारे ही हैं और इतने पर यह अभिमान? अपने भक्तो का यह मिथ्याभिमान मुझे मिटाना चाहिए।

लक्ष्मी—अभिमान व्यक्ति को पतन के गहरे गर्त्त में डालता है। आप श्री नारदजी को उससे अवश्य वचाइये।

विष्णु—अच्छा तो मुझे अव माया रचनी चाहिये। (थपड़ी वजाकर) योगमाया! ओ योगमाया!!

योगमाया—(प्रवेश करके) आज्ञा प्रभो!

विष्णु—देवि! तुम शीघ्र पुण्य-भूमि भारत के उत्तर प्रदेश हिमालय की उपत्यका में जाकर एक तालाव और भव्य-महल निर्माण करो और उसमें राग-रागिनियों को उनके पुत्र और पुत्र-वधुओं सहित अपनी माया से निर्माण करो। देवर्षि नारद को सङ्गीत-पारङ्गत होने का अभिमान हो गया है, अतएव उनका यह दर्प दूर करना है।

योगमाया—तथास्तु!

विष्णु—जाओ, शीघ्र प्रस्थान करो। नारद जी अभी आते ही होंगे। हम वहा शीघ्र ही आते हैं।

योगमाया—जो आज्ञा (प्रस्थान)

लक्ष्मी—नाथ! क्या यह कौतुक मुझे नहीं दिखावेंगे।

विष्णु—अवश्य! चलना, तुम भी चलना। (नेपथ्य की ओर कान देकर) दूरी पर वीणा की ध्वनि और गान की स्वर लहरी सुनाई पड़ रही है। शायद नारदजी पधार रहे हैं।

(नेपथ्य में "भज गोविंद ०" गायन का सुनाई पड़ना और नारदजी का प्रवेश)

नारद—नारायण, नारायण।

विष्णु—(लक्ष्मी सहित आदर देकर) चलिए मृत्युलोक चलिए ! आज लक्ष्मी जी भी चलना चाहती हैं।

नारद—बड़ी अच्छी बात है। चलिए ! (तीनों का प्रस्थान)

दृश्य चतुर्थ !

स्थान—हिमालय की उपत्यका] [समय—अपराह्न काल

(दृश्य—नारद सहित विष्णु और लक्ष्मी का प्रवेश।)

विष्णु—धन्य हिमगिरि धन्य ! कैसी तपोभूमि है ! योगी जनों के लिए यह निसर्ग की अद्भुत रचना है। स्वर्गोपम भारत ! तू धन्य है। तेरी गोदी में पलने वाले मनुष्य धन्य हैं।

लक्ष्मी—(विष्णु से) प्रभो ! प्यास के मारे कण्ठ सूखा जा रहा है, जी घबराता है। आगे कदम रखने की अब मुझ में हिम्मत नहीं है।

विष्णु—नारद जी ! ज़रा कमण्डल लेकर इधर-उधर जल तो तलाशिए। जलचर पक्षियों का कलरव सुनाई तो दे रहा है। सम्भवतः थोड़ी दूर पर ही तालाब हो।

नारद—अभी जाकर, पानी लाता हूँ।

(वीणा रख कर, कमण्डल लिए नारदजी का प्रस्थान)

विष्णु—(वीणा उठाकर बजाने लगते हैं और लक्ष्मी जी गाती हैं)

लक्ष्मी—

गाना

जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के सङ्कट पल में दूर करे ॥
जो ध्यावे फल पावे, दुख विनशे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ जय० ॥

(लक्ष्मी सहित विष्णु का अन्तर्ध्यान होना)

दृश्य पञ्चम !

स्थान—एक सुन्दर रम्य सरोवर और पास में सुन्दर महल।) (समय—अपराह्न।

(दृश्य—नारद का सरोवर के तट पर खड़े हुए दिखाई पड़ना।)

नारद—(स्वयं) कितना रम्य जलाशय है। बरबस अपनी ओर मन को खींचे लेता है। पास ही यह सुन्दर भवन राजप्रासाद को भी लज्जित कर रहा है। मैं यहां रात दिन विचरण करता हूँ, किन्तु यह स्थान आज तक मेरे देखने में नहीं आया। पहले इस महल को देखलूँ इसमें कौन भाग्यशाली निवास करता है ?

(महल की ओर प्रस्थान, सीन ट्रांसफर होना और महल में लँगड़े, लूले, अन्धे, काने, बूचे, अङ्ग भङ्ग स्त्री पुरुषों का कराहते हुए और आर्त्तनाद करते दिखाई पड़ना।)

नारद—(आश्चर्य से स्वयं) हैं! यह क्या? इतने सुन्दर महल में और यह विभत्स दृश्य? क्या यह धर्मशाला है? नहीं! यहाँ तो सभी अङ्ग भङ्ग मनुष्य हैं। मालूम होता है कोई अनाथालय है। ...... नहीं! अनाथालय में पनावा तो ठीक-ठाक पूर्णाङ्ग होता। कोई अपङ्गाश्रम विदित होता है। देखें, इन लोगों से पूछ कर पता तो लगाऊँ यह बात क्या है?

(प्रकट) क्यों भाई! तुम लोग कौन हो? इस दुर्दशा में तुम कैसे पड़े? तुम्हारा करुण विलाप मेरे हृदय को व्यथित कर रहा है। शीघ्र कहो।

एक व्यक्ति—महाराज! हम अपना दुःख किस प्रकार वर्णन करें। हमारा दुःख दिनों-दिन बढ़ ही रहा है। इससे छुटकारा पाने की कोई आशा नहीं। महाराज! हम सब राग रागिनी हैं। हम सभी अपने पुत्र और वधुओं सहित अत्यन्त पीड़ित हैं। कारण यह कि कोई एक नारद नामक देवताओं का ऋषि है। उसे कुछ आता जाता तो है नहीं परन्तु वह अपनी टाग सङ्गीत में अड़ाता जरूर है। वह कहता है कि मैं सङ्गीत का पारंगत हूँ। उसी दुष्ट ने हमारी यह दुर्गति की है। उसने हमारे अङ्ग भङ्ग कर दिए हैं। किसी राग का कुछ ले भागता है तो किसी रागिनी का कुछ ले उड़ता है। उस नारद ने हमारी मिट्टी पलीद की है। हम उसके मारे परेशान हैं। न जाने भगवान कब उससे हमारा पिंड छुड़ावेगा? हमें यह वेदना अत्यन्त असह्य है। इससे तो हमें मृत्यु से आलिङ्गन करना अच्छा मालूम होता है। तड़प-तड़प कर मरने से तो एक दम प्राण निकलना श्रेष्ठ है।

नारद—मैं नारद को अच्छी तरह जानता हूँ। वे तो अद्वितीय सङ्गीतज्ञ हैं, अपूर्व गायक हैं और अद्भुत नाद शास्त्री हैं।

दूसरा व्यक्ति—खाक हैं, पत्थर हैं। आप देखते नहीं, हमारी क्या दुर्दशा हो रही है?

नारद—नारद के सङ्गीत की तो स्वयं शङ्कर और विष्णु ने प्रशंसा की है। वे भी उनकी धाक मानते हैं।

एक व्यक्ति—नारद को खुश करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर वगैरह उनकी प्रशंसा कर दिया करते होंगे। उनकी मुँह चुपड़ी बातों से ही नारद के हौसले बढ़ते जा रहे हैं। वर्ना नारद को आता ही क्या है?

नारद—मैं एक नई बात सुन रहा हूँ, जो विचित्र है।

दूसरा व्यक्ति—प्रत्यक्ष देख कर भी विश्वास नहीं होता! आप स्वयं विचित्र व्यक्ति मालूम पड़ते हैं।

नारद—मैं आपकी सहायता करने का प्रयत्न करूँगा। (प्रस्थान)

(सीन ट्रांसफर होना)

नारद्—(जलाशय से कमण्डल भरते हुए स्वयं) सिर चकराता है। क्या मैंने वास्तव में राग रागिनियों को देखा है? या कोई स्वप्न देख रहा हूँ? प्रभो यह क्या विचित्र व्यापार है? नारायण, नारायण। मैं लक्ष्मी जी के लिए ज़ल लेने आया था। बहुत देर हो गई। वे प्यासी होंगी। शीघ्र चलना चाहिए। (प्रस्थान)

दृश्य षष्ठम !

स्थान—जङ्गल] [समय—सायंकाल

दृश्य—सुनसान।

नारद—यहीं तो बैठे थे। विष्णु और लक्ष्मी कहाँ गए? वीणा तो यह पड़ी है। मुझे अधिक विलम्ब होने के कारण वे रुष्ट हो कर अपने लोक को चले गए। कैसा अपराध हुआ? क्षमा, प्रभो क्षमा! चलूँ उनसे अपने अपराधों की क्षमा माँगूं। आज कैसा अशुभ दिन है? क्या-क्या देखना पड़ा?

(खिन्न मन से वीणा उठा कर सखेद, नारायण नारायण कहते हुए प्रस्थान)

॥ यवनि का पतन ॥

—०—

जय राम हरे ! घनश्याम हरे !!

(सङ्गीत भूषण श्री० "विन्दु" जी शर्मा)

रे मन ! प्रति श्वांस पुकार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे।
तन नौका की पतवार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ॥
जग में व्यापक आधार यही, जग में लेता है अवतार यही।
है निराकार साकार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ॥
ध्रुव को ध्रुवपद दातार यही, प्रहलाद गले का हार यही।
नारद वीणा का तार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ॥
सब सुकृतों का आगार यही, गङ्गा-यमुना की धार यही।
श्री रामेश्वर हरिद्वार यही, जय राम हरे, घनश्याम हरे ॥
सज्जन का साहूकार यही, प्रेमी जन का व्यापार यही।
सुख "विन्दु" सुधा का सार यही, जयराम हरे घनश्याम हरे ॥

———

ध्रुपद

"तिलक कामोद"
(चारताल मात्रा १२)

(स्वरकार श्री० पं० नरायणदत्त जी जोशी ए० टी० सी०)

यंशः पंचम संवादी रिवक्रः सोरटी सदक् ।
आरोहे वर्ज्यधो रात्रौ कामोदस्तिलकादिकः ॥
(चन्द्रिकायाम्)

परि मंवादीवादि है, चढत न धैवत गात ।
वक्र रिषब सोरटहिसें तिलककमोद सुहात ॥
(चन्द्रिकासार)

पनी सरी गसौ रिध पमौ गसौ रिगौ सनी ।
कामोदस्तिलकाद्याऽसौ रि वादी कीर्तितोनिशि ॥
(अभिनवरागमंजरी)

यह खमाच ठाठ का राग है, इसके आरोह में धैवत का स्वर वर्ज्य है, इसीसे इसकी जाति षाड़व-सम्पूर्ण है। इसमें सब स्वर शुद्ध लगते हैं। निषाद कभी २ कोमल भी लगाया जाता है। यह सोरठ अंग का राग है। खमाज के दो अंग माने जाते हैं-१खमाज अंग और २ सोरठ अंग। १-खमाज अंग के राग-खमाज, झिझोटी, दुर्गा, खंबावती, तैलंग, रागेश्वरी और गारा हैं॥ २-सोरठ अंग के राग-सोरठ, देश, जयजयवंती और तिलक कामोद हैं। इस रागमें सोरठ के समान रिषभ वक्र लगता है और यही इसका वादी स्वर है, इसका सम्वादी स्वर पंचम है और गाने का समय रात का दूसरा प्रहर है।

राग स्वरूप-प् न् स र ग स र प म ग स र ग स न्।

—:गीतः—

देखो देखो आज कान्ह, मार गयो नैना बान ।
मार गयो नैना बान, पलक बान चलावै श्याम ॥
हम जो अपने घरसे निकसि, पनिया भरन जमुना न्हान ॥
पाय अकेलि घेर लई, अबला समझ निबल जान ॥

—(*)—

×		०		२		०		३		४	
ऩ	–	प़	ऩ	–	स	र	प	म	गर	ग	स
दे	ऽ	खो	दे	ऽ	खो	आ	ऽ	ज	का	ऽ	न्ह
सं	–	न॒	ध	म	पध	रम	पध	म	गर	ग	स
मा	ऽ	र	ग	ऽ	थो	नै	ऽ	ना	बा	ऽ	न
म	–	म	प	न	न	नसं	–	सं	सं	–	नसं
मा	ऽ	र	ग	ऽ	थो	नै	ऽ	ना	बा	ऽ	न
प	रं	सं	न॒	ध	ध प	रम	पध	म	गर	ग	स
प	ल	क	बा	ऽ	न	च	ला	वै	श्या	ऽ	म

अन्तरा

×		०		२		०		३		४	
म	म	म़	म	न	न	सं	सं	सं	न	सं	स
ह	म	जो	नि	क	सि	अ	प	ने	घ	र	से
प	न	न	न	सं	•	संन	रं	सं	न॒	ध	पध
प	नि	यां	भ	र	ने	ज	मु	ना	न्हा	ऽ	न
म	–	प	प	न	सं	रं	पं	मं	रंगं	सं	–
पा	ऽ	य	अ	के	ली	घे	ऽ	र	ल	ई	ऽ
प	न	सं	रं	संन॒	ध	धप	ध	म	गर	ग	स
अ	ब	ला	स	म	झ	नि	ब	ल	जा	ऽ	न

ध्रुपदाचार्य तानसेन सम्बन्धी एक दर्द भरी दास्तां

आरामगाह

(ले०-श्री० पं० दाऊदत्त उपाध्याय साहित्यतीर्थ)

सुना है, शहरे इश्क के गिर्द—
मजारें ही मजारें हो गई हैं, । 'मीर'

—(आ)—

यह दास्तां उस जमाने के जिगर के पतों को उलटती पुलटती है, जब कि जिन्दादिली का जोर था। रूप और जवानी के नमूने रनिवासों की रोनक में मद और मस्ती के, महलों की सीढ़ियों पर रसिकता रपटती थी । फिर भी देश ने दिल और दिमाग दोनों को बिल्कुल तलाक़ नहीं दे दिया था। गदाई तो गरीबों के लिए रिजर्व थी ही—उन्हीं दिनों एक रोज दिल्ली में एक नौजवान आया, खूबसूरत और हृष्ट पुष्ट। लिबास राजपूती, सब्जे घोड़े पर सवार, हाथ में सेल और कमर में लटकती तलवार से लैस।—उस समय शूरता राष्ट्र का एक साधारण (स्वाभाविक) धर्म थी—शहर पनाह के सिंहद्वार में उसने प्रवेश किया और सराय की टोह में पूछ ताछ करता आगे बढा, उसका ऊंचा माथा तेजोविशेष का परिचायक था। उसकी अनियारी आखों—चेहरे और शरीर पर राही नर नारियों की नजर फिसलती और डटती।

उस समय भारत के सिर पर मुगल साम्राज्य के सौभाग्य अकबर का शासन सूर्य तपता था—ताज ताक़त और तवंगरी का दौर—दौरा था!

दिल्ली अप्सरा की तरह चिरयौवना होते हुए भी नई नवेली सी लगती थी। अलबेले नौजवान, और खबीस बूढे बूढियां, बुलबुले-गुलाब से गुदगुदे बालक, एवं वय की बहार से लदी बुलबुलें, सभी उसके सौभाग्य शृंगार की, दर्शकों की राहतकी चीजें थीं। राह चलते पायजामा, लम्बी अचकन, मुगलाना सिरपेच, और देहलवी जूतों से सजे मर्दों में, चूड़ीदार चुस्त पायजामा, कमीज, काश्मीरी धानी आसमानी चूंदिया, सिरपें पाटिया, नाकों में बुलाक, कानों में बाली और गालों में लाली वाली—रग बिरंगी सुन्दरियों के दामन से सजी भामिनी दामिनियों में अजब खिचाव था।

गली, कूचे और अट्टालिकाएं, राजमार्ग और वन बाग तालाब हर एक की एक कहानी है।

आज भी शहर पनाह और बूढ़ी अन्य इमारतें, लाल किला और उसके बेगमागार, जुम्मा मस्जिद और हुमायूं का मकबरा (भूल भुलैयां) निजामुद्दीन और जगह-जगह सोयी हुई गुमनाम आत्माओं की असंख्य कब्रें उस जमाने की याद में

सिसकियां भरती हैं। सर पर से कितना समय प्रवाह वह गया, अनेकों बार ऋतुराज ने आकर इनके समर्चन की चेष्टा की, अपने सौरभके भार से असह्य सदमा पहुंचाया। क्यों कि; आज वे भोगने वाले कहां थे। ग्रीष्म ने उत्ताप ताप में तपाया और पूछा, क्या तुम्हारे शासन ताप में मेरी समता थी? बादलों ने पुरानी कसक उभारी, रोये और रुलाया, कलेजे का कुछ भार हलका किया, शरद ने फिर फांसने को फीका ज्योत्सना का जाल डाला; पर 'मछलियों' का अभाव था। हेमन्त "जाड़े के कसाले को मसाला एक बाला है" की याद ताजी करता। शिशिर शीत ने रूह को सहारा दिया। किंतु जिनकी दीवारें गरीबों के खून के गारे से चुनी और खड़ी की गयीं,आज सौभाग्य शून्य (गत श्री) हो, शायद वे उसी पाप का प्रायश्चित करती हों! समीर कुछ ऐसा ही सम्वाद चारों ओर फैलाता है।

(रा)

उन दिनों दिल्ली देश भर के महत्वाकांक्षियों, प्रतिभाशालियों, कलाविशारदों, वीरों और पुरुषार्थियों के आकर्षण का केन्द्र थी—सभी को अपनी योग्य कद्र कीमत की आकांक्षा इस ओर खींचे ले आती। प्रतिभा के लिए कहीं कोई रोक-टोक नहीं! क्योंकि क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतांनोपकरणे, फिर भी साधन सुविधाओं का जमाव सर्वत्र नहीं होता। वह युवक भी इसीलिए दिल्ली आया था कि बादशाह को अपना कौशल दिखाये?

दरबार में सुनवाई भी हो चुकी थी। और मीर मुन्शी से मिल, शाह सलामत की हुजूर में पेश होने का मौका भी तय हो गया था। इसी बीच एक रोज वह सराय से शहर की सैर को निकला। दिल्ली के लिए वह बिलकुल अजनबी था—राजधानी की रीति भांतों से वाकिफ न था। सभी बातों के बारे में जानकारी हासिल करने की हौंस थी, अतएव जिधर को मुँह उठाता, चल पड़ता। उस रोज वह दिन भर घूमा, बीच में कुछ फल फूल मोल ले उदरशांति कर ली थी। दिल्ली का दिल-मीना बाजार, कालीनों के बाजार, हाथी दांत की पच्चीकारियां एवं नक्काशी, कूजड़िनों की चबचब, काश्मीरी गेट की चहल-पहल शाही दफ्तर और किसी जमाने के हस्तिनापुर या इन्द्र-प्रस्थ के पाप पखारती; लाल किले के गले में बाहें डाले बही जाने वाली यमुना,सब कुछ देखा?

कल्पनाओं की तूलिकाओं से हृदय पट पर अनेकों अतिरंजित सुख चित्र अङ्कित किये।

घर की ओर लौटती बार जब कि वह शाही महल की दीवार के नीचे से गुजर रहा था। उसकी नज़र एक अटारी के झरोके पर पड़ी। एक यवन ललना, जिसके लिये कि रसिकराज जगन्नाथ ने 'यवनी नवनीतमिव कोमलांगी........अवनीतल मेव साधु मन्ये, कहा है—कबूतर उड़ा रही थी। ज्योंही कबूतर ने उड़ान भर नीचे की—ओर कलामुण्डी खाई दोनों की चश्म चार हुईं। उस चितवन में जादू भरा था गजब का। जिगर में एक मीठा सा दर्द उठ पड़ा। बेसुध हो एक टक बड़ी देर तक

देखता रहा। आखिर एक अन्धे यतीम से टकरा कर चिन्तन का तार टूट गया और खुदा की राह के राही उस अन्धे को कुछ दे वह नोजवा आगे बढा।

अभ्युदय और आजीविका के लिये आये हुए उसने एक नई पीड़ा मोल ली थी। पर सस्ती न थी। वास्तव में बिना किसी दुःख-दर्द के प्रतिभा का प्रकर्ष नहीं होता, वह उसी दिन से झूलती लता सी लचकीली एवं पतली, नर्गिसनुमा नयनों वाली, उस खूबसूरती की पुतली की तस्वीर को जिगर के तख्त पर तमन्नाओं की ताजपोशी कर पहलू में पाले था।

(म)

आज शाही नजरबाग के दीवाने खास में जलसा था। बादशाह खुद नोजवान के कोशल की करामात निहारने वाले थे। दिल्ली की सदेह समृद्धि सा वह दीवान खूब जगमगा रहा था। चारो ओर गुलाबजल छिड़का हुआ था। चारों ओर बिछे कालीनो पर मसनदें लगीं थीं, और उन पर खास-खास मुसाहिब अपने-अपने दर्जे के अनुसार एक तरफ आसीन थे। बीच में रत्नजटित तख्त था जिस पर बादशाह बैठे थे। दूसरी तरफ तख्त के पास आसीन थे शाहजादे, एवं शाहजादिया बैठी थीं। और पीछे चिकों मे थीं बेगमें। रत्नों और जवाहिरों की चमक चकाचोंध पैदा करती रही थी, और चिकों के अन्दर यथा बाहर (इन & आउट) की आखें भी रत्नों की प्रतिद्वन्दितामें गजब ढा रही थीं, मानो वे रत्नों से पूछती हो ! "क्या निर्जीवों मे सजीवता की समता करने की ताकत है?" पर फिर झुक भी जातीं, उफ ! इन निर्जीवों की तरह कायम रहने वालो हम नहीं।

सोंदर्य लतिकाओं के सौरभ की, सबा मे लपटें उठतीं, कानों मे कोई बात कह जातीं। सोंदर्य सुधा, सुरा और सुन्दरी ही मानव जीवन की सफलता का लक्ष्य है। ऐसा वहा प्रतीत होता था।

आखिर ठीक वक्त पर महफिल में रेशमी रुमाल से हाथ बाधे उस नोजवा ने प्रवेश किया। बादशाह ने हाथ खोले और मजूरी बख्शी, कई बार धरती छू अभिवादन कर वह बीच में अपने लिए नियत स्थान पर बैठ गया।

वह सङ्गीत साधक था। और आज तक इस ब्राह्मण कुमार ने (स्वरात्मा-रसो वेंस -) नाद ब्रह्म की अनवरत साधना की थी। आज उसका चेहरा कुछ फीका था, उस गुल के मानिन्द जिसे गर्म हवा का सख्त झोंका नसीब हुआ हो। उसने सामने रखा हुआ इसराज उठाया, जो कि घर से ठीक करके पेश्तर भिजवा दिया था। खोली उतारी, तार मिलाये, और साजिन्दों ने भी मिलाये सब तैयार होजाने पर तारों मे एक हलकी सी मिजराब दी, बेचारे कॅपकपाये और झनझना उठे, सारङ्गी सिसकी तबले की टकोर ने हृदयों में अपनी प्रतिध्वनि का प्रतिघोष पाया। स्वर मंडल नाच उठा वह गाने लगा -

जब नज़र साकी पै डाली जायगी,
फिर कहां ? तबियत सम्हाली जायगी।
आंख नर्गिस की निकाली जायगी,
बुलबुलों के रुख की लाली जायगी।
आंखें, रहजन नहीं तो क्या है ?
लूट लेतीं हैं काफिला दिल का।
कुछ न कुछ लेजायगी दिलकी कसक,हां
ये भरे घर से न खाली जायगी।

—गाते २ उसने अनेकों वार आरोहावरोह से स्वरों की श्रुति मूर्छना साधी, मीड़ खींची। दिलरुवा के तारों में मानों उसका दिल बज रहा था। उसकी आवाज गा नहीं रही थी। किन्तु करुण स्वर लहरी कांप और कराह रही थी। उसके गाने ने स्वर सप्तकों के सहयोग से संगीत का एक धुंधला सा मूर्त रूप खड़ा कर दिया। गान वन्द हुआ। वायु मंडल अभी तक गूंज और कांप रहा था। दरो दीवार से भी कंपक-पाहट भरी प्रति ध्वनि उठ रही थी। जैसे सवा पर सवार हो किसी कूजित वेणु वनकी गुनगुनाहट मचलती फिरती हो। अकवर बोल उठा—आफ़रीं ! वाह रे, उस्ताद खूब इल्म हासिल किया ! तेरे गले के लोच और मिठास पर मुश्ताक़ हूँ, बोलो तुम्हें क्या इनायत हो।

सब मुसाहब भी सूचक तौर पर वादशाह की हां में हां मिलाने लगे। पर गायक आनन्द में आत्म विस्मृत हो, भावावेश से बेसुध सा था। वादशाह के सम्बो-धन से तन्द्रा टूटी, और आज्ञाधारक तौर पर वादशाह की तरफ देखने लगा। उसी वक्त एकाएक इत्तफाक से शाहजादियों के टोल पर वहीं नजर पड़ी,जहां कि वह खूबरू वैठी थी। हिचकते हुये वोला:—जहांपनाह ! गुस्ताखी माफ हो तो कहूँ ?

"हां, कहो कहो ?

"तो क्या……मुराद पूरी होगी ?

"अकबर फ़रेब जानता ही नहीं"

उसी तरफ वह इशारा करके वोला:—मुझे वह खूबरू इनायत हो !

अकबर (चौंक कर) कौन, नूरुन्निसा' ?

जी हां जहांपनाह'!

वादशाह सिर झुका कर विचार में पड़ गया। महफिल में सन्नाटा छा गया। सब शिर झुकाये सोच रहे थे, और आपस में काना फ़ूसी कर रहे थे। महफिल में वैठे हिन्दुओं के चेहरे और भी जर्द थे कि क्या होगा ? पास में बैठे मन्त्रियों से सलाह मशवरा कर अकवर ने सिर ऊंचा किया। और सभा पर एक नजर फेंकी,

हालत भाप ली और बोला- 'नोजवान! अकबर बदजुबा नहीं होगा, पर एक शर्त है? जवान की जान में सास आई, वह बोला—वह कौन?"

वो ये कि तेरा जैसा इल्मी उस्ताद दीने इलाही की कदम बोसी करे तो नूरन्निसा तेरी होगी।

गायक को गहरा धक्का लगा, अकचकाया, स्तब्ध हो गया, गला सा घुटने लगा। पर न जाने किस जादू के असर ने उसके रुधे गले से निकलवा दिया। मंजूर है।"

शायद आजाद रूहे दुनियावी मजहब और कौम के बाह्य बन्धनों को इसीलिये ज्यादा महत्व नहीं देती कि उनके लिये दैहिक और ऐहिक नियमों से आत्मा का आंतरिक सम्बन्ध ज्यादा मजबूत है। ठीक तो वही जाने! इस तरह की प्रवृत्ति में क्या रहस्य है! किन्तु एक बुतपरस्त को बुतपरस्ती का मूल्य आखिर यों चुकाना पड़ा। वहा बैठे हिन्दुओं के चेहरे जर्द थे। जबान देने की अजब कसाकसमें फंसके अकबर के मुंह पर लड़की देने में शानो शौकत की शर्म या झेंप न थी। बल्कि एक काबिल काफिर दीन भी तो बदल रहा था। प्रसन्न होकर उसने कहा तो फिर शर्त कबूल है।

'जी हुजूर"-

"अच्छा" और मैं आज से हरम मे तुम्हें सबों को गाने बजाने की तालीम के लिए मुकर्रर करता हूँ।' 'जो हुक्म' वह नत मस्तक होरहा। सभा बर्खास्त हुई। बादशाह उठ खड़ा हुआ, हरम की ओर कदम बढाया, सभी उठ खड़े हुए। घर जाते २ कुछ हंसते थे, कुछ गमगीन थे। पर क्या करते मन मसोसकर रह गए।

—गा—

जन श्रुति है कि जब देश में सुख शांति होती है, तभी, कला कौशल शिल्प एवं विद्या (संस्कृति) की उन्नति होती है। पर उस समय देश में चोमेर अधाधुन्धी की भी कमी न थी, फिर भी गुणवान जनमते थे। यह नौजवान ही, तानसेन था। इतिहास में खचित दरबारे अकबरी के उज्जवल नव रत्नों में से एक।

तब, ब्रज की बाँसुरिया दिव्य चक्षु सूर, 'शशी तुलसी' कबीर और रामानन्द विरक्त दैजू और स्वाधीनता का पुजारी प्रताप, आदि नररत्न अपने २ दम से इतिहास को सजीव बना रहे थे।

तानसेन चिरकाल तक वैभव के पुतलों का दिल बहलाता रहा। क्योंकि चाही चीज के पाने में वह सुखी-और मस्त था। उसने अपनी साधना का उन्माद बरसों तक महलों में उलीचा, बखेरा और लुटाया। बेगमों और शाहजादियों को संगीत की तालीम दी पर अब चैन के चाद पर काली घटा छाने को थी।

एक दिन वह सिखला रहा था, खास मलका जाई शाहजादी (दौलतुन्निसा) को गुलशन के संगमर्मर के एक चबूतरे पर बैठा। खूब समा था, आस्मान में घटायें

घिरने लगी, और न जाने क्यों ? उसका मन मचलने लगा, मन्द सुरभित गीले पवन ने मना किया, मनाया। पर गुलों ने दिल गुदगुदाया, बुलबुल ने कुन्जे कफ़स में फँसने की आपबीती कही ?

"उस्ताद जी ! क्या दीपक राग गाने से दिए जल उठते हैं, और बदन में आग पैदा होती है ?" शाहजादी ने पूछा।

"हां ज़रूर, इतना ही नहीं, वल्कि रागिनियों से बादल बरसते हैं, परिन्दे चौपाये और दूसरे जानवर बस हो जाते हैं, पत्थर भी पिघलते हैं। वह बोली "तब ज़रूर सुनाइये" हठ पकड़ते हुए वह बोली। उसे आग लगने की बातपर यक़ीन न हुआ।

"मगर वह राग तभी गाया जा सकता है, जब कोई मल्हार गाने वाला ऐसा हो कि मेह बरसाये ? नहीं तो जानने के लिए खतरा रहता है इसी से मैं कभी नहीं गाता।"

शाहजादी को उसकी बात न पटी, खूब जिद की, पर सफल न होने पर वह उठ कर चली गई। हरम में उसने हठ की आग लगाई। यह खबर उसकी, बीवी, बेगमें और ठेठ बादशाह तक पहुंची। अकबर ने उसे बुलाया, पूछा, "क्या शाहजादी की बात सच है ?"

"जी जहांपनाह"

"तो तुम्हें एक रोज सुनाना होगा, क्यों नहीं सुनाना चाहते ?"

"जहांपनाह ! उसके बाद मलार गाने वाले की जरूरत पड़ती है, जो पानी वरसा सकता हो ? और मेरी निगाह में ऐसा एक ही शख्स है, बैजूबावरा,"

अपने अभिन्न हृदय नेही 'विरक्त वैजू, की याद में उसकी आंखें पानी भर लायीं, वे छलछलाने लगीं। आखिर त्रिया हठ और राज हठ के आगे कुछ न चली, अजब कशमकश,में बेचारा क्या करता ? मंजूर कर लिया।

"जो मैं मरूं तो मुझे मादरे वतन में दफनाया जाय ?' उसने कहा। क्यों कि उसे खुद, दीपक राग गाने में शलभ होजाने का विश्वास न था। लड़कपन में कुछ प्रक्रिया सीखी जरूर थी। आग्रह करने वालों में भी, यद्यपि कोई दिल से उसकी जान का ग्राहक न था, किन्तु किसी को भी इसकी बातों का यकीन था।

—मलार गाने का भार उसकी प्रिया को सौंपा गया। क्योंकि वह उससे वह सीखकर संगीत में परम प्रवीण हो गयी थी। उसरोज महल में काफ़ी हलचल थी, बिना जलाये संजोये दिये रखे थे। तानसेन की ताकत की परीक्षा होने को थी, खरा उतरे कि खोटा जानने को सभी उत्सुक थे। ठीक वक़्त पर वह आया-अकबर को अभिवादन किया, बैठा, तार मिलाये और छेड़ दी उस वक़्त उसके चेहरे पर एक चमक थी। धीरे २ तन्मयता बढ़ने लगी "दीपक उद्दीपन गान गहन" गूंज उठा उसके ज्वालामुखी जिगर के जलते लात्रे महाराग के रूप में, शायद उसने मृत्यु का आह्वान किया। गुलाब जल और इत्र छिड़के हुए शशि शीतल भवनोंमें ग्रीष्मका उत्तापताप फैल गया। दर्शकोंने

तोता पुकारी अब उसके हाथ से साथ छूटपड़ा, उसका अन्तर ज्वाला से जल रहा था। वह कटे तरु की भांति गिर पड़ा। उसकी फुर्तीली महबूब ने तत्काल तय्यार वीणा खींची, मलार शुरू किया। आंखों के आकाश से पुतलियों के पयोधरोंने टपटप आंसू (बून्दें) बहा वरुणाकर पीयूष सिंचन किया। पर राग के त्रिलोचन से बिना देह जले ही मदन दहन हो चुका था। अब सिर्फ निशानी शेष थी, उस कामिनीके काफी कलपने पर भी सिज लहदपर लोटने के कुछ न हासिल हुआ। अकबर चकित था, और सारा महल मूर्तिमान् मातम। 'लाई हयात आये कजा लेचली चले, अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले" के स्वरों में समीर सिसकियां भर रहा था। अन्तिम मुराद के मुआफिक उसकी कायाको राष्ट्र हृदय राजस्थान के हृदय में स्वर्गादपिगरीयसी जन्म-भूमि की गोद में सुलाया गया।

जहा आज भी मजार में मिट्टी में लिपटी सोयी, उसकी पाक रूह दुनियां को मूक सदेश दे रही है। और " खाक से रगबत रहे मिलना है एक दिन खाक में " का पाठ पेश कररही है।

(ह)

रोज आधी रात को सफेद परिधान पहने, बगल में दिलरुबा दबाये, हाथ मे फूलों की डाली लिए, एक हसीन नाजनी उस मजार पर आती—बेसुध हो उसे जगाती गाती—

आरामगाह तेरी पर फूल पत्तियों से।
कितने बना बिगाडे नक्शे सनम तुम्हारे।

दामन से पोछती, साफ करती फूल चढाती, आसुओं की चादर तानती, पहरों लिपटी रहती, तब कहीं कलेजे का कुछ भार हलका हो पाता। आकाश के उदास तारे ये सब चुपचाप देखा करते। वह और कोई नहीं प्रेम योगिनी नूरुन्निसा थी।

इस व्रत में उसने बरसों बिताए। आखिर एक दिन वह भी चलबसी। अन्तिम इच्छा के अनुसार वह भी वहीं दफना दी गई। ~ · अब वह न रही, न सही। पर वह अपनी साधना जिन्हें सुपुर्द कर गई, वे सूर्य, शशि, रोज दिनरात बारी २ से अब भी उसपर भांक उभक देखरेख रखने आने जाते हैं। और अमावस के आगन में मिलकर प्रबन्ध पर विचार विनिमय करते है। वन वेलें, पेड़ पौधे आज भी उस पर बलिहारी जाते गुलफसानियां करते हैं, और इठलाती बलखाती हुई मथर बयार उसे (कब्रको) बाहों में कसती, प्यार करती, दुलराती और मीठी थपकियां देती है। शबनम ने रात भर रो २ कर उस दिल जले की रूह को राहत पहुंचायी, प्यास बुझाई।

यों वह स्थल और जमाना आज भी वहा आने वाले आदमियों से उस आरा-मगाह में आराम करने वाले उस अतृप्त अरमानों वाले प्रेमी युगल की कहानी कहता है।

—o—

नोटः—तानसेन की कब्र ग्वालियर में है। वहां प्रतिवर्ष जबर्दस्त उर्स मनाया जाता है। सहस्त्रों मनुष्यों का जमघट होता है। एक जन प्रवाद प्रचलित है कि हजरत तानसेन की कब्र पर जीभ लगाने, और उस पर साया किए खड़े वृक्ष की पत्तियां खाने से गला सुरीला हो जाता है। कुछ लोग तानसेन की कब्र की स्थिति मथुरा देहली के बीच में कहीं मानते हैं। इसका ऐतिहासिक इतिहास विवाद ग्रस्त हो सकता है। पर हमें तो वस्तु से काम। —लेखक
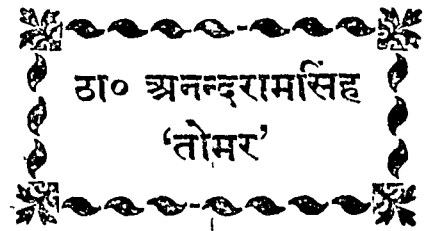
ठा० अनन्दरामसिंह
'तोमर'

(झपताल मात्रा १०)

वादर आए री, उमड़-घुमड़ आज!
चमकत बिजुरी, वादर गरजत—
'आनन्द' बरसत, मेह घुमड़ आज॥

वा ऽ	द ऽ र	आ ऽ	ये ऽ री	उ म	ड़ ऽ घु	म ड़	आ ऽ ज
प न	सं – रं	न॒ ध	प – ध	म प	प – ध	म ग	र – ग
च म	क – त	बि जु	री ऽ ऽ	ग र	ज ऽ त	बा ऽ	द ऽ र
स र	म – प	प न	सं – सं	न सं	रं – सं	न॒ ध	प – –
आ ऽ	नं ऽ द	ब र	स – त	मे ऽ	हा ऽ उ	म ड़	आ ऽ ज
प न	सं – सं (रं)	न॒ ध	प – ध	म प	प – ध	म ग	र – ग

राग-विवरण—जाति औढव सम्पूर्ण, अर्थात आरोह में गन्धार और धैवत वर्जित हैं। निषाद दोनों शेष स्वर शुद्ध। पंचम वादी, रिषभ संम्वादी, गान समय रात्रि का द्वितीय प्रहर।

आरोहावरोह—स र म प न सं। सं न॒ ध प म ग र स।

स्वामी हरिदास की ध्रुपद,

चौताल मात्रा १२	पूरिया	षाडव जाति

सहज जोड़ि प्रगट भई जो रङ्ग कि गौर श्याम घन दामिनी जैसे ।
प्रथम हुति आज हु अनेहु रहे हैं नटार है कैसे ॥
अङ्ग अङ्ग के उघरई सुघरई सुन्दरता वैसे वैसे ।
श्री हरीदास के स्वामी श्याम कुंज विहारी अद्भुत रूप अनेसे ॥

स्थायी

ऩ	र॒	ग	र॒	गर॒	स	ऩऩ	ध॒	म॑ध॒ऩ	सर॒	स	स
स	ह	ज	ऽ	जोऽ	डि	प्रग	ट	ऽऽऽ	ऽऽ	भ	ई
स	र॒	स	स	स	स	ग	ग	ग	ग	ग	ग
जो	ऽ	रं	ऽ	ग	की	गौ	ऽ	र	श्या	ऽ	म
म॑	म॑	नध॒	म॑	ग	ग	म॑	ग	र॒	र॒	स	स
घ	न	ऽदा	ऽ	ऽ	ऽ	मि	नी	ऽ	ऽ	जै	से

अन्तरा

म॑	ध॒	न	न	ध॒	म॑	ग	ग	सं	सं	सं	सं
प्र	थ	म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हु	ति	ऽ	ऽ
न	र॒	नध॒	म॑	म॑	ग	न	न	ध॒म॑	ग	ऩ	ऩर॒
आ	ऽ	जहु	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ने	हूऽ	ऽ	र	हेऽ
ग	ग	न	नध॒	म॑	ग	म॑	ग	र॒	र॒	स	स
	ऽ	न	टाऽ	ऽ	र	है	ऽ	ऽ	ऽ	कै	से

संचारी

नन	नन	नन	नन	धध	धध	मम	गग	म म	मम	गग	गग
आंऽ	गऽ	आंऽ	गऽ	केऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	उघ	रई	सुघ	रई
र	र	र	ग	र	ग	म	ग	र	र	स	स
सुं	द	र	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वै	से	वै	से

आभोग

म	ध	नसं	नसं	सं	सं	सं	सं	नरं	गं	मं	गरं
श्री	ऽ	हरि	दास	के	ऽ	स्वा	मी	श्या	म	कुं	जऽ
गं	गं	र	सं	नध	मग	नन	नन	धम	गर	सस	स
वि	हा	ऽ	री	ऽऽ	ऽऽ	अद	भुत	रूऽ	पऽ	अनें	से

—※—
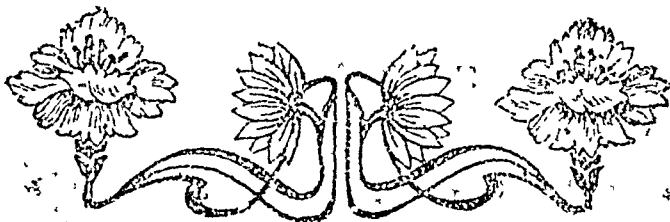
महिला समाज और संगीत

(ले०—श्रीमती शैलकुमारी चतुर्वेदी-जयपुर)

आज के इस उन्नत युग में जब कि सङ्गीत कला का भी अन्य कलाओं के साथ साथ विकास होने लगा है, लोग इसकी उपयोगिता समझने लगे हैं। न केवल पुरुषों में प्रत्युत महिलाओं में भी इस कला का प्रचार उत्तरोत्तर तीव्र गति से होता जा रहा है। घर-घर में लड़के लड़कियों को सङ्गीत की शिक्षा दी जाती है। स्कूलों कालेजों में भी सङ्गीत को स्थान मिलता जा रहा है, यूनिवर्सिटियों ने भी इसको अपना लिया है। कन्या पाठशालाओं में भी इसका प्रवेश हो गया है। वास्तव में इसका श्रेय सङ्गीत का जीर्णोद्धार करने वाले महानुभावों को ही है।

इतना होते हुये भी इसके प्रचारमें अनेकानेक बाधायें भी उपस्थित होती रहतीहैं होनी भी चाहिये, क्योंकि प्रचार कार्य में बाधाओं का उपस्थित होना तो स्वाभाविक ही है। संसार में सभी प्रकार के व्यक्ति होतेहैं, कोई किसी वस्तु को हानिकारक समझता है तो कोई उसीको लाभदायक। संसार की यह गति तो सदा से है और रहेगी।

कुछ लोग तो ऐसे हैं जो "सङ्गीत कला" को ही दूषित समझते हैं, दूसरी श्रेणी के लोग केवल पुरुषों में तो इसका प्रचार चाहते हैं परन्तु महिलाओं को इससे वंचित रखना चाहते हैं। भूल दोनों ही श्रेणी के लोगों की है। सङ्गीत कला दूषित तो कैसे हो सकती है? हां, जिन विचारों को दृष्टि में रख कर अथवा जिन उदाहरणों को लेकर इस कला को दूषित बताया जाता है, वह किसी हद तक ठीक भी है परन्तु वह भूल कलाकारों की है उसमें कला का क्या दोष? अश्लील पुस्तकों के प्रकाशन से क्या भाषा दूषित हो सकती है? दूषित तो वे पुस्तकें ही होंगी और दोषी उनके लेखक। उनका जिम्मेदार समस्त साहित्य नहीं हो सकता। यही हाल सङ्गीत कला का भी है। यदि कहा भी जाये तो सङ्गीत की शिक्षा प्रणाली को दूषित कहा जा सकता है। सङ्गीत कला को नहीं।

महिला समाज में सङ्गीत प्रचार का विरोध करने वालों का भी यही कहना है कि सङ्गीत की शिक्षा से महिलाओं पर दूषित प्रभाव पड़ता है। परन्तु उनका यह समझना भूल है। यदि उन्हें उस प्रकार की शिक्षा का ढंग पसन्द न हो जिसको वह दूषित समझते हैं तो वह दूसरी प्रणाली का अनुसरण कर सकते हैं, परन्तु सङ्गीत कला से ही उन्हें अर्थात् महिलाओं को वंचित रखना उचित नहीं कहा जा सकता। शृङ्गार रस के या अन्य कलुषित गायनों का प्रयोग न करके धार्मिक एवं उपदेशप्रद गायनों

द्वारा क्या सङ्गीत की शिक्षा नहीं दी जा सकती ? चेष्टा तो इस बात की होनी चाहिये कि कला को "सत्यं शिवं सुन्दरम्" का रूप दिया जाये और उसमें से अश्लीलता को समूल नष्ट करके उसे पवित्र बना दिया जाये।

इतिहास साक्षी है कि प्राचीन काल में महिलाओं को भी सङ्गीत कला में प्रवीण बनाया जाता था। बौद्ध काल में और उसके बाद भी जब कि महिलाओं को इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त न थी जैसी कि रामायण और महाभारत कालमें थी और उनकी सामाजिक दशा बन्धनयुक्त होती जा रही थी उस समय में भी महिलाओं को साहित्य और सङ्गीतकी शिक्षा देना अनिवार्य समझा जाताथा। भारतवर्ष के इतिहास से यह स्पष्ट है मुग़ल काल में भी विशेषतया उस काल में जो मुग़लकाल का स्वर्णयुग कहलाता है महिलाओं को सङ्गीत की शिक्षा दी जाती थी। शाही घराने की महिलाओं में भी इसका काफी प्रचार था। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ ज्यों-ज्यों सङ्गीत का वातावरण दूषित होता गया त्यों-त्यों कला को भी बदनाम होना पड़ा, महिलाओं में भी सङ्गीत के प्रचार की कमी होती गई। इतना ही नहीं मानव समाज द्वारा भी इसकी उपेक्षा की गई और इस प्रकार कला का काफी ह्रास हुआ। विलासी नवाबों के हाथों में पड़ कर इस पवित्र कला को अत्यन्त क्षति पहुँची और तभी से इसकी उपेक्षा होने लगी। लोग इस कला को दूषित एवं अश्लील समझने लगे।

सङ्गीत कला की जो उपयोगिता मानव समाज के लिये है वह महिला समाज के लिये भी तो है। जिस प्रकार साहित्य स्त्रियों के लिये उपयोगी एवं आवश्यक है उसी प्रकार सङ्गीत भी तो है। कलुषित सङ्गीताकर्षण द्वारा सत्पथ से विचलित हो कर आचरण भ्रष्ट होते हुए व्यक्तियों को महिलाओं का शुद्ध पवित्र सङ्गीत विनाशपथ की ओर अग्रसर होने से रोक भी तो सकता है। ऐसा कई बार हुआ भी है। सङ्गीत-सुशिक्षिता महिलायें अपने सुपावन शिक्षाप्रद पवित्र सङ्गीत द्वारा अपनी सन्तान का महान् उपकार कर सकती हैं क्योंकि उपदेश, भाषण, कथन, शिक्षा आदि (गद्य) की अपेक्षा सङ्गीत (पद्य) अधिक आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होता है। मनोरंजन का साधन भी तो यही होता है, इसलिये इसके द्वारा शीघ्र ही सरलतापूर्वक कोई भी शुभ कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। आज कल भी तो प्रचार कार्य में सङ्गीत से बहुत कुछ सहायता ली जाती है (भजनोपदेशकादि के द्वारा)। अतएव अल्पवयस्क सन्तान माता के शिक्षापूर्ण सङ्गीत द्वारा अवश्य लाभान्वित हो सकती है। इतना ही नहीं, सङ्गीत लोलुप पति भी अपनी पत्नी के पवित्र सङ्गीत द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ यथेष्ट लाभ उठा सकता है। यहां तक कि कुपथ की ओर अग्रसर होने से भी अपने आप को सुरक्षित रख सकता है। इसके अतिरिक्त महिलाओं का अपना निजी मनोरंजन एवं लाभ तो है ही।

अतः महिला समाज में सङ्गीत प्रचार की अनिवार्यता अवश्य है। हां, इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है, कि जिस सङ्गीत का प्रचार महिला समाज में किया जाये वह अश्लीलता रहित शुद्ध एव पवित्र, धार्मिक और शिक्षाप्रद होना चाहिये मुख्यत पद अथवा गायन दूषित न होने चाहिये और यह बात जरा भी कठिन नहीं, बिल्कुल सरल एवं साधारण है। सङ्गीत के विद्वानो को भी सङ्गीत कला का रूप सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र बना देना चाहिये। शिक्षकों का भी यह कर्तव्य है कि वह सङ्गीत की शिक्षा इस प्रकार दें कि जिससे नैतिकता का पतन न हो सके और महिलाओं के लिये वह उपयोगी सिद्ध हो। जिस प्रकार साहित्य में बालोपयोगी व स्त्रियोपयोगी साहित्य का प्रथक स्थान होता है, उसी प्रकार सङ्गीत में भी होना चाहिये। यह कर्तव्य सङ्गीत के लेखकों व कवियों का है, क्योंकि मुख्यत गायनों से ही वातावरण दूषित या शुद्ध बनता है। आशा है सङ्गीत से सम्बन्धित सभी प्रकार के विद्व सज्जन इस ओर ध्यान देंगे तथा महिला समाज में विशुद्ध सङ्गीत प्रचार की चेष्टा करेंगे। मैं अपनी बहनों से भी इस ओर ध्यान देने का अनुरोध करती हूँ।

भारत माता !

(ले०—श्री० नन्दकिशोर जी बी० ए० एल० एल० बी०)

शीश झुका कर भारत माता तुझको करूं प्रणाम।
शीतल, निर्मल तेरी नदिया, सब्ज तेरे गुलज़ार।
खुशबूदार हवायें तेरी, हरसू मौज बहार॥
तेरी मीठी चादनी रातें कैसी हैं पुरशान।
तू है मेरी स्वतन्त्र माता, और महा बलवान॥
कितनी सुन्दर बातें तेरी, कितने मीठे बोल।
तू है सुख की सागर माता, शब्द तेरे अनमोल॥
कौन तुझे निर्बल, कहता है कौन कहै कमजोर।
तीस करोड़ आवाज़ें तेरी, जिस दम करती शोर॥
तेरे हाथो मे जब चमकें, खङ्ग साठ करोड़।
दुश्मन सारे डरके मारे, भागें रन को छोड़॥
विद्या तू है, धर्म भी तू है, और तुही है ज्ञान।
तन भी तू है, मन भी तू है, तू है सब की जान।

साहित्य भूषण श्री० उमेश चतुर्वेदी
और उनकी धर्मपत्नी
श्री० शैलकुमारी चतुर्वेदी

'उमेश' जी से संगीत के पाठक भली-भांति परिचित हैं, विशेषांक के प्रथम पृष्ठ पर जो कविता प्रकाशित हुई है, उसके रचयिता आप ही हैं।
श्री० शैलकुमारी जी ने इस विशेषाङ्क के लिये "महिला समाज और संगीत" लेख भेजा है, जो पृष्ठ ७० पर प्रकाशित हुआ है।

श्री० भट्ट पद्मनाभ चक्रवर्ती 'शेखर'

"इस विशेषाङ्क के लिये" आपने ध्रुपद के रेला और परन खास तौर पर तैयार कर के भेजे थे, जो पृष्ठ १८८ पर प्रकाशित हुए हैं। आपकी ताल सम्बन्धी जानकारी बहुत अच्छी है।

Gokul Press Hathras.

मेनका के
" ग्रामीण नृत्य "
का
एक दृश्य

"संगीत"

नृपदाक १६३६
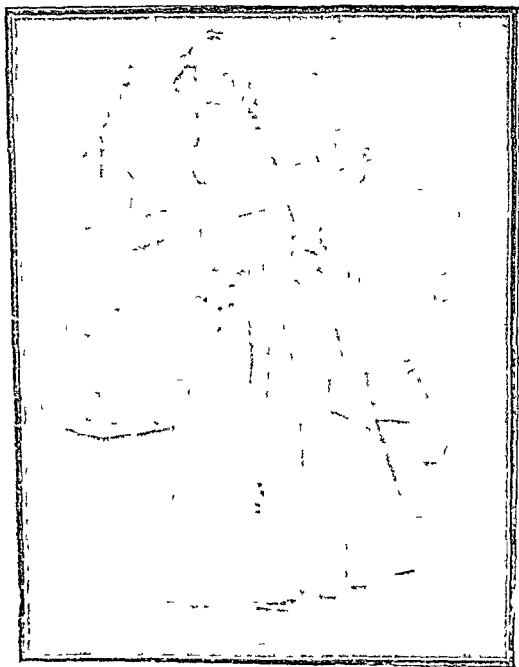
संयुक्तप्रांत के ग्राम्यगीत

"सुदर्शन"

श्री० सुदर्शन जी हिन्दी भाषा के उच्चकोटि के गद्यकार हैं। सहयोगी 'हंस' में आपने यू० पी० के ग्राम्यगीतों का बड़ा ही रोचक तथा सरस वर्णन किया है। गीत और सङ्गीत का परस्पर सम्बन्ध ही नहीं, अपितु यह उसका एक मुख्य अङ्ग भी है। अतः सङ्गीत पाठकों के मनोरंजनार्थ वह लेख यहां दिया जा रहा है। खेद है कि स्थानाभाव के कारण पूरा लेख इस अङ्क में हम नहीं दे सके हैं, इसका शेष भाग सङ्गीत के आगामी अङ्कों में दिया जायगा।

देशों और जातियों के जीवन में पुराने अनघढ़ ग्राम्यगीतों को वही महत्ता प्राप्त है, जो हमारे मनुष्य-जीवन में हमारे सुनहरे बाल-काल की रङ्गीन स्मृतियों को प्राप्त है। भारतवर्ष के ग्राम्यगीत भारतवर्ष के भूले-बिसरे हुए ज़माने की वह यादगारें हैं, जिन्हें देखकर हम किसी दूसरी दुनियां में पहुँच जाते हैं। इस दर्पण में हम अपने पुराने भारतवर्ष की आत्मा देख सकते हैं, अपने पूर्वजों के विचार सुन सकते हैं और उनके दिलों की गहराइयों का अध्ययन कर सकते हैं। मगर हमारा ध्यान इधर नहीं जाता। या यों समझिये कि हमारा पुराना भारतवर्ष हमें अपनी तरफ़ बुलाता है और हम गुमराह बच्चों की तरह उसकी आवाज़ को सुनकर भी नहीं सुनते। उसके पास हमारे लिए अनमोल हीरे-मोती हैं। वह हमें अपनी सम्पत्ति देना चाहता है, मगर हम उसे लेने को तैयार नहीं। एक दिन आयेगा, जब इन रत्नों के लिए हम तरसेंगे और जगह-जगह की खाक छानेंगे; मगर यह रत्न हमारे हाथ न आयेंगे।

* * *

हमारा भारतवर्ष इस समय एक खास युग से गुज़र रहा है। उसका गार्हस्थ्य-जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। उसकी आर्थिक स्थिति नष्ट हो गई है। उसके कला-कौशल का ईश्वर ही रक्षक है। व्यापार के मैदान में हम दुनियां के सभी देशों से पीछे हैं शिक्षा के विचार से अमेरिका के हवशी भी हमसे अच्छे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सब बातें भारतवर्ष के दुर्भाग्य के लक्षण हैं; मगर सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि भारतव से उसका भारतवर्ष छिन रहा है। हम भारतवर्ष में रहते हुए भी भारतवर्ष दूर होते जा रहे हैं। मानो हम भारतीय नहीं हैं, किसी और देश के निवासी हैं।

इस लेख में जो गीत दिये गये हैं, उनमें से अधिकतर श्री० रामनरेश त्रिपाठी की पुस्तक 'ग्रामगीत' से लिये गये हैं। अतः मैं उनका आभारी हूँ।—लेखक

मानो हम यहां पैदा ही नहीं हुए। हमने अपने रहने के लिए एक खास जगह बना ली है। हम उसी के अन्दर सन्तुष्ट हैं। हम वहीं रहते हैं, वहीं हँसते-खेलते हैं, वहीं बड़े होते हैं और बूढ़े होकर वहीं मर जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हम हिन्दुस्तान में रहते हैं, मगर हमारा वह हिन्दुस्तान कहाँ है, जिसमें हमारे पूर्वज रहते थे, जिसमें हमारी स्त्रियाँ कूओं से पानी भरती थीं, रात के पिछले पहर उठ कर चरखा कातती थीं और अपने परदेश गये हुए पिया की याद में विरह और वियोग के हृदय विदारक गीत गाती थीं? वह हिन्दुस्तान कहाँ है, जिसमे पीपल और बरगद की घनी छाँह थी, आम और इमली के हरे-भरे पेड़ थे, कोयल मीठे-मीठे बोल बोलती थी और बहिन ससुराल में जाकर अपने भाई का रास्ता देखती थी? वह सौन्दर्य और सुगन्ध का संसार, वह काव्य और कला का कुंज, वह प्यार और पवित्रता का परिस्तान कहाँ चला गया?

* * *

वह देश हम से दूर नहीं है, मगर हमारी बीसवीं सदी की सभ्यता हमें उधर देखने की आज्ञा ही नहीं देती। जब हम उसकी तरफ बढते हैं तो हमारी भाषा दीवार बन कर बीच में खड़ी हो जाती है और हम उस देश के लिए तरसते और तड़पते रह जाते हैं, जो हमारे पूर्वजों की बस्ती है, जिसमें पुराने हिन्दुस्तान के पुराने, लेकिन दिल में गुदगुदी पैदा करने वाले दृश्य आज भी अपनी पूरी शान और शोभा के साथ मौजूद हैं। वह देश ग्राम्यगीतों में बसा हुआ है, मगर हमारे कमजोर हाथों में इतना बल कहा कि जबान की उस दीवार को हटा सकें, जो हमारे और उस बस्ती के बीच में खड़ी है? जरा सुनिये, चाँद और चन्दन के इस महान् जगत से कुछ मीठी-मीठी आवाजें आ रही हैं।

कमर में सोहै करधनियाँ पाँव पैजनियाँ।
ललन दूरि खेलन जनि जाओ ढुँढ़न हम न अउबै ॥ १ ॥
सात बिरन की बहिनिया बाप धिया एकै।
हरिजी के परम पियारि ढूँढ़न कैसे अउबै ॥ २ ॥
भोर भये भिन सरवा कलेवना की जुनियाँ।
होइगै कलेवना की बेर ललन नहिं आये ॥ ३ ॥
सात बिरन की बहिनियाँ बाप कै एकै।
मैया बाबू कै परम पियारि ढूँढ़न कैसे आइउ ॥ ४ ॥
छाँडेउ मैं सातौ बिरनवा बाप कै नैहर।
छोड दिन्है हरि की सेजरिया ढूँढ़न हम आइन ॥ ५ ॥

जैसे कुम्हार क आँवाँ त भभकि–भभकि रहै ।

बेटा वैसइ माई क करेजवा त धधकि–धधकि रहै ॥ ६ ॥

भावार्थ--बच्चे की कमर में करधनी है और पैरों में घुँघरू बंधेहैं । मा कहतीहै–बेटा ! कहीं दूर न चले जाना, मैं ढूढ़ने को नहीं निकलूँगी । १ ।

मैं सात भाइयों की बहन हूँ । मैं अपने बाप की इकलौती बेटी हूँ । मैं अपने पति की परम प्यारी हूँ । भला मैं घर से बाहर कैसे निकल सकती हूँ । २ ।

दिन चढ़ आया । जल पान का समय हो गया । लेकिन लड़का नहीं आया । ३ ।

मा व्याकुल होकर घर से निकल आई । देखा कि लड़का बाहर खेल रहा है ।

लड़के ने हँसकर पूछा–मा, तू तो सात भाइयों की बहन है और अपने बाप की इकलौती बेटी है और मेरे पिता की परम प्यारी है । तू घर से बाहर कैसे निकल आई । ४ ।

मा ने जवाब दिया–बेटा ! मैंने सातों भाइयों की इज़्ज़त छोड़ दी, बाप का ख़याल छोड़ दिया और तेरे पिता के प्रेम की भी परवाह नहीं की और तुझे ढूंढ़ने के लिये बाहर निकल आई । ५ ।

बेटा, अभी तू अनजान है; तू क्या जाने ! जिस तरह कुम्हार का आंवां सुल–गता है उसी तरह बेटे की जुदाई में मा का दिल भी सुलगता रहता है । ६ ।

यह गीत मा का खुला हुआ दिल है । पहले उसे अपने भाइयों पर मान था, बाप पर अभिमान था और पति के प्रेम का भरोसा था । मगर लड़के की खातिर वह किसी बात की भी परवाह नहीं करती । लड़का आँखों से ओझल हो जाय तो उसकी दुनियां अँधेरी हो जाती है । वह बेचैन होकर घर से बाहर निकल आती है । अन्तिम चरण कितना हृदय-विदारक है । बेटे की जुदाई में मा का कलेजा इस तरह सुलगता रहता है, जिस तरह कुम्हार का आवाँ सुलगता है । जिसने यह गीत बनाया है, उसने, ईश्वर जाने छन्दशास्त्र पढ़ा था या नहीं, लेकिन इसमें शक नहीं कि उसने माता की प्रकृति का गम्भीर अध्ययन किया था ।

*　　　*　　　*

रामचन्द्र के वनवास का दुःखपूर्ण दृश्य हजारों कवियों ने बयान किया है । अपनी–अपनी जगह पर वे सभी वर्णन बहुत अच्छे हैं और दिल पर असर करने–वाले हैं । मगर जो तासीर गाँव के किसी अज्ञात कवि ने इस गीत में भर दी है, वह किसी को नसीब नहीं हुई ।

सोने के खरउवां राजा राम कउसिला से अरज करइ हो राम ।

हुकुम न देउ मोरी मैया, मैं वन कै सिधारउ हो राम ॥१॥

राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरी हो राम।
अरे रामा सीता रानी हाथ क चुरिया कैसे बन भाखउं हो राम ॥२॥
पोयउं मैं घिये क सोहरिया दुधे कर जाउरि हो राम।
अरे रामा एतना जेवन मोर निखभा राम मोर वन गये हो राम॥३॥
चारि दिल चारि दीप बरै हमरा अकेल बरइ हो राम।
रामा मोरे लेखे जग अंधियार राम मोर वन गये हो राम॥४॥
भितरां से निकसी कउसिला नैनन नीर बहइ हो राम।
रामा राम लखन सीता जोडिया कवनै बन होइहैं हो राम॥५॥
राम बिना सूनी अजोध्या लखन बिन मन्दिल हो राम।
मोरी सीता बिन सूनी रसोइया कइसे जियरा बोधन हो राम॥६॥
मन्दिल दीप जरइबै और सेजिया लगइबै हो राम।
रामा आधी रात होरिला दुलरबै जनुक राम घरहिन हो राम॥७॥
सवना भदवनां क दिनवा घुमरि बन बरसहि हो राम।
रामा राम लखन दूनो भइया कतहुं होइहे भींजत हो राम॥८॥
रिमिकि—झिमिकि दयू बरसइ मोरे नाहीं भावै हो राम।
दैवा ओहि वन जाइ जनि बरसहु जहां मोर लरिकन हो राम॥९॥
राम क भींजै मुकुटवा लखन सिर पटुका हो राम।
मोरी सीता क भींजै सेंदुरवा लवटि घर आवहु हो राम॥१०॥

भावार्थ–रामचन्द्रजी सोने के खड़ाऊं पहने हुए अपनी मा कौशल्या के पास आये और बोले–ऐ मेरी मा! मैं तुमसे वन जाने की आज्ञा माँगने आया हूँ। १।

मा कहती है–राम मेरे प्राण हैं, लक्ष्मण मेरी आँखों की पुतली है और सीता मेरे हाथ की चूड़ी है। हाय, मैं उन्हें वन जाने को कैसे आज्ञा दे दूं। २।

मैंने घी की पूरियां बनाई हैं और दूध की खीर पकाई है। हाय! मेरा राम वन को चला गया। मुझे यह-सब जहर सा लगता है। ३।

चारों मन्दिरों में चार दीपक जल रहे हैं, मेरे मन्दिर में एक ही दीपक जलता है। मगर मुझे तो मालूम होता है जैसे सारे संसार में अँधेरा हो गया है। ४।

कौशल्या महल के अन्दर से रोतीहुई निकली और ठण्डी साँस लेकर बोली-हाय मेरे राम, लक्ष्मण और सीता किस वन में होंगे। ५।

राम के बिना मेरी अयोध्या उजाड़ है, लक्ष्मण के बिना मेरा महल वीरान है और सीता के बिना मेरी रसोई सूनी है। मेरे व्याकुल हृदय को किस तरह शान्ति प्राप्त हो। ६।

रात को मैं दीया जलाऊंगी, सेज बिछाऊंगी और जब आधी रात हो जायगी, तब अपने बेटे को प्यार करूंगी, मानो मेरा बेटा मेरे पास है और मेरे महल में सोया हुआ है। ७।

सावन भादों के दिन हैं, बादल घुमड़-घमड़ कर बरस रहे हैं। परन्तु हाय! राम और लक्ष्मण न जाने किस वन में भीग रहे होंगे। ८।

आज पानी बरस रहा है। जल-थल एक हो रहा है। मगर हे मेघ! मेरे बेटे जङ्गल में हैं। वहां तुम मत बरसना, नहीं तो वे भीग जायेंगे। ९।

राम का मुकुट भीग रहा है, लक्ष्मण के कन्धे का दुपट्टा भीग रहा है और मेरी सीता की मांग का सिंदूर भीग रहा है। मेरे पुत्रो! तुम तीनों घर चले आओ, जंगल में बड़ी तकलीफें हैं। १०।

शब्द कितने सीधे-सादे हैं। मगर उनके अन्दर मा की ममता छिपी हुईहै। ऐसा पत्थर को भी पिघला कर पानी की तरह बहा देने वाला वर्णन संस्कृत और हिन्दी के कवियों में से भी शायद ही किसी ने किया होगा। पढ़कर आँखों में आँसू आ जाते हैं। साफ मालूम होता है कि यह गीत किसी दुखिया मा का बनाया हुआ है। यही कारण है कि इसमें केवल काव्य कल्पना ही नहीं, बल्कि प्यार और दुलार भी कूट-कूट कर भरा हुआ है। और फिर एक-एक बात स्वाभाविकता के रस में समोई हुई है। बनावट का कहीं नाम निशान भी नहीं है।

* * *

ब्याह के अवसर पर संयुक्तप्रान्त की स्त्रियां जो गीत गाती हैं, वे कितने भावोत्पादक और रसीले हैं। एक नमूना लीजियेः--

सोवत रहलिउँ मैं मैया के कोरवाँ मैया के कोरवाँ हो।
मेरी भौजी जे तेल लगावैं तौ झुँड़वा गुँधन करैं हो ॥१॥

आई हैं नाउनि ठकुराइन तौ बेदिया चढ़ि बैठी हो।
वै तो ललित मेहावरि देय तौ चलन–चलन करैं हो ॥२॥

एक कोस गई दूसर कोस गई तिसरे माँ बिन्द्रावन हो।
धना झालरि उघारि जब चितवैं मोरे बाबाके कोई नाहीं हो ॥३॥

लिल्ले घोडा चितकाबर दुलहा जे बोलै हो।
उनके हथवा सबज कमान अपान हम होई हो ॥४॥
भूख मा भोजन खियैहौं मैं पियासे मा पानी देहौं हो।
धनियां रखबौं मैं हियरा लगाय बबैया बिसर जैहौं हो ॥५॥

भावार्थ—मैं अपनी मा की गोद में सोती थी और मेरी प्यारी भाभी मेरे सिर में तेल लगा कर मेरे बाल बनाती थी। १।

यह नाइन ठकुराइन आई है और वेदी पर चढ़ बैठी है। मेरे पैरों में इसने बहुत ही सुन्दर महावर लगा दी है और मुझे बार-बार चलने को कहती है। २।

एक कोस गई, दो कोस गई, तीसरे कोस पर वृन्दावन आ गया। दुलहिन ने पालकी का परदा उठा कर देखा तो उसे अपने बाप की तरफ का कोई आदमी दिखाई न दिया। ३।

नीले चितकबरे घोड़े पर दूल्हा सवार था और उसके हाथ में हरे रङ्ग की कमान थी। उसने कहा—घबराओ नहीं, तुम्हारा मैं हूँ। ४।

भूख लगेगी, मैं खाना खिलाऊँगा, प्यास लगेगी, मैं पानी पिलाऊँगा। हे मेरी प्यारी स्त्री! मैं तुझे गले से लगा कर रखूँगा, तू अपने बाप को भी भूल जायगी।५।

* * *

ब्याह का एक और गीत देखिये। कितना दर्द भरा है कि कलेजे से हूक-सी उठती हुई मालूम होती है।

खाइ लेहु खाइ लेहु रे दहिया से रे भात।
तोहरी ऊ बिदवा बेटी बड़े भिनु रे सार ॥ १ ॥
निरना कलेउआ ए अम्माँ हँसी खुशी रे द ।
हमरा कलेउआ ए अम्माँ दिहेउ रिसियाइ ॥ २ ॥
हम अउ निरना ए अम्मा जनमे एक रे संग।
संग-संग खेलेउँ रे अम्माँ खायउँ एक रे संग ॥ ३ ॥
भइया के लिखला ए अम्माँ बाबा कइ रे राज।
हमरा लिखला ए अम्माँ अति बडी दूर ॥ ४ ॥
अँगना घूमि आ रे घूमि अम्माँ जे रोवैं।
कतहूँ न देखउँ ए बेटी नेपुरवा भमकान ॥ ५ ॥

भावार्थ—किसी लड़की का ब्याह हो चुका है और दूसरे दिन उसकी विदाई होने वाली है। उस समय उसकी मा रोती हुई कहती है—रे मेरी बेटी! चावल और दही खा ले, कल सवेरे ही तुझे यहाँ से चल देना है। १।

लड़की उत्तर देती है—हे मा! जब तू भइया को खाना खिलाती थी, तो हँस-हँस कर खिलाती थी; मगर मुझे खाना खिलाते समय तेरे मुँह पर कुछ नाराज़गी आ जाती थी। २।

हे मा! मैं और भैया दोनों एक ही पेट से पैदा हुए, एक ही आँगन में खेले-कूदे एक ही साथ खाते-पीते रहे। मगर अब उसे तो बाप का सारा राज मिल गया; लेकिन मुझे परदेश में धकेल रही हो। ३।

लड़की के चले जाने पर मा आँगन में चारों तरफ़ खोजती फिरती है और रो-रोकर कहती है—हाय मेरी बेटी की पाजेब की झनकार कहीं सुनाई नहीं देती।

कैसे कलेजे में उतर जाने वाले भाव हैं। लेकिन उस समय का ध्यान कीजिये, जब ब्याह के बाद लड़की बिदा होने को है। मा-बाप दोनों उसे गले लगाते हैं और फूट फूट कर रोते हैं। सामने दुलहा और बारात के सब आदमी दुलहिन को ले जाने के लिए खड़े हैं और औरतें मिलकर दर्द भरी आवाज़ में गाती हैं। उस समय इस दर्द भरे गीत से से जमीन और आसमान दोनों थर्रा उठते हैं।

* * *

एक बहुत ही छोटी उमर की लड़की का व्याह एक अस्सी बरस के एक बुड्ढे से होने को है। उस समय स्त्रियाँ एक उपयुक्त गीत गाती हैं। यह गीत कितना अर्थ पूर्ण और भावमय है कि दिल पर छुरियाँ चल जाती हैं।

पाँच बरसिवा को मोरी रँगरेली असिया बरिस कै दमाद।
निकरि न आवै त मोरी रँगरेली अजगर ठाढ़ै दुआर॥ १॥
आँगन किचकिच भीतर किचकिच बुढ़ऊ गिरे मुँह बाय।
सात सखी मिलि बुढ़ऊ उचावैं बुढ़ऊ सेंदुर पहिराव॥ २॥

भावार्थ—इधर हमारी पाँच बरस की दुलारी बेटी है, उधर अस्सी बरस का बुडढा खूसट दामाद है। आ मेरी प्यारी बेटी! बाहर निकल आ। दरवाजे पर तुझे निगलने के लिए अजगर मुँह बाये खड़ा है॥ १॥

आँगन में भी कीचड़ है, भीतर भी कीचड़ है। बुड्ढा मुँह के बल गिर पड़ा सात सहेलियों ने मिल कर उसे उठाया और कहा कि चल कर लड़की की माँग में सिन्दूर डाल दो।

अस्सी बरस के बुडढे की अजगर के साथ उपमा देकर गीत बनाने वाले या बनाने वाली ने जो कवित्वमय सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है; उसकी तारीफ़ नहीं हो

सकती। अजगर भी भयानक होता है, बुड्ढा भी भयानक होता है। जिस तरह अजगर एक ही जगह पड़ा रहता है, उसी तरह बुड्ढा भी एक ही जगह पड़ा रहता है और हिल-डुल नहीं सकता और अन्त में जिस तरह अजगर अपने शिकार को धीरे-धीरे निगल जाता है, उसी तरह बुड्ढा पति भी अपनी जवान स्त्री की आशाओं, उमङ्गों, अरमानों और यहाँ तक कि खुद उसको भी निगल जाता है। यह गीत नहीं है, बड़ी अवस्था के वर के साथ व्याह करने के विरुद्ध स्त्रियों के दिल की चीत्कार है। ईश्वर करे स्वार्थी, जोवन के लोभी अधे नर-पिशाच अबलाओं का यह चीत्कार सुनें और इस प्रकार के व्याहों को, जिन्हें व्याह कहना व्याह शब्द का अपमान करना है, सदा के लिए बन्द कर दें।

*　　　*　　　*

की हो दुलहे रामा अमवा लुभाने की गये बटिया भुलाय।
कब से रसोइया लिहे हम बैठी जोनउँ मे एकटक राह ॥१॥
दुलहिन रानी न अमवा लुभाने ना गये बटिया भुलाइ।
बाबाके बगिया कोइलिया एक बोलै कोइलि सबद सुनो ठाढ।२
चिठिया एक लिखि पठइन दुलहिन दिहो कोइलरि के हाथ।
तनि एक बोलिया नेवरतिउ कोइलरि परभु मोर जेंवनके ठाढ।३
चिठिया एक लिखि पठइन कोइलरिदिहो दुलहिन देइ के हाथ।
एसइ बोलिया तु बोलि के दुलहिन दुलहे न लेतिउ बिलमाय

भावार्थ—ऐ मेरे प्रीतम! क्या तुम आम के वृक्ष पर रीझ गये थे? या घर का रास्ता भूल गये थे? मैं कबकी तुम्हारा भोजन तैयार करके तुम्हारी राह देख रही हूँ। १

प्रीतम ने उत्तर दिया—हे मेरी दुलहिन-रानी! न मैं घर का रास्ता भूला था, न आम के पेड़ पर रीझा था। मेरे बाप के बाग में कोयल बोल रही थी। वहीं मुझे देर हो गई। २।

दुलहिन ने कोयल को एक चिट्ठी लिख कर भेजी—हे कोयल रानी! कृपा करके थोड़ी देर के लिए अपनी बोली बन्द कर दो। मेरा प्रीतम भोजन करने के लिए घर आ रहा है। ३।

कोयल ने जवाब दिया—हे दुलहिन-रानी! अगर तुम भी मेरी तरह ऐसी ही मीठी बोली बोला करो, तो तुम्हारा पिय किसी दूसरी पर क्यों रीझे। ४।

(शेष आगामी अङ्क में)

गौरंग-रस राहतदासी चतुरङ्ग

राग विहागरा (विहागड़ा)

(शब्दकार तथा स्वरकार—शेख़ राहत अली, बड़ौदा वाले)

(लेखक और प्रेषक-श्रीयुत न० शं० भावे)

चार ढंगः—सरगम, तराना, तिरवट, और गीत,

चार तालः—त्रिताल, पंचक, छक्का और खम्सा,

राग विवरणः—

इस राग में सब शुद्ध स्वर हैं। कोई कोमल निषाद भी लगादेते है। आरोह में ऋषभ और धैवत वर्जित है। वादी स्वर गंधार और संवादी स्वर निषाद है कोई मध्यम वादी और निषाद संवादी भी मानते हैं। विहाग राग में दोनों मध्यम लगते हैं, विहागड़ा में एक ही मध्यम (शुद्ध यानी कोमल) है। गाने का समय-रात का दूसरा प्रहर है।

स्थाई

सरगम	ग	म	प	प	सं	–	–	–	न	ध	प	म	ग	र	स	–
ताल त्रिताल	३				×				२				०			
तराना	ना	दिर	दिर	त	नों	ऽ	ऽ	ऽ	तों	ऽ	त	न	दे	रे	ना	ऽ
ताल पंचक	४			५	×			०	२			०	३			०
तिरवट	तक	धुम	किट	तक	ता	ऽ	ऽ	ऽ	धा	किट	तक	धुम	किट	तक	धा	ऽ
ताल छक्का	५			६	+			०	२			३	०			४
गीत	ह	म	रे	पि	या	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ए	प	र	दे	स	वा	ऽ
ताल खम्सा	५			०	×			०	२			३	०			४

सरगम	ग - स -	ऩ ऩ - ऩ	स - ग र	सा - प म
ताल त्रिताल	३	×	२	०
तराना	ता ऽ न्नों ऽ	त न ऽ त	दीं ऽ - दे रे	ना ऽ त न
ताल पंचक	४ ५	× ०	२ ०	३ ०
तिरवट	ता ऽ धा ऽ	त धा ऽ ध	कि ट दिग नग	थुं ऽन् धा किट
ताल छक्का	५ ६	× ०	२ ३	० ४
गीत	आ ऽ ए ऽ	मो रे ऽ न	फि र दे स	चा ऽ गि न
ताल खम्सा	५ ०	+ ०	२ ३	० ४
सरगम	प ग - म	प - नि -	ग - प म	ग र स -
ताल त्रिताल	३	+	२	०
तराना	न दीं ऽ त	दीं ऽ त न	ना रे नि त	ना रे दीं ऽ
ताल पचक	४ ५	+ ०	२ ०	३ ०
तिरवट	तक धिला ऽग धि	त्ता ऽ धि ग	ता ऽ तक धुम	किट तक धा ऽ
ताल छक्का	५ ६	+ ०	२ ३	० ४
गीत	त ता ऽ रे	क टे र ज	नी ऽ मो री	स ज नी ऽ
ताल खम्सा	५ ०	× ०	२ ३	० ४

सरगम ताल त्रिताल	ग म प प ३	आगे अन्तरा, अथवा इनके बदले चार मात्रा विश्रांति लेके अन्तरा शुरू करना
तराना ताल पंचक	ना दिर दिर त ४ ५	” ” ” ” ” ” ”
तिरवट ताल छक्का	तक धुम किट तक ५ ६	” ” ” ” ” ” ”
गीत ताल खस्सा	ह म रे पि ५ ०	” ” ” ” ” ” ”

अन्तरा

सरगम ताल त्रिताल	(४ मात्रा छोड़कर)	ग म प सं ×	– न सं – २	गं रें सं सं ०
तराना पञ्चक	”	ना दिर दिर दीं × ०	ऽ त दीं ऽ २ ०	त न ना रे ३ ०
तिरवट छक्का	”	ता दी धि त्ता × ०	ऽ धुं गा ऽ २ ३	धुं किट दां दां ० ४
गीत खम्सा	”	उ न वि ना × ०	ऽ मो हे ऽ २ ३	क ल ना प ० ४

सरगम	म नृ प प	न न प ध	प म ग र	प म ग र
त्रिताल	३	×	२	०
तराना	त द् दा नी	त न ना त	दा रे दा नी	त न दे रे
पञ्चक	४ ५	× ०	२ ०	३ ०
तिरवट	दिलां ऽग थुं गा	थुन् थुन् तक थुं	गा ता थुं गा	तक थुं किट तक
छक्का	५ ६	× ०	२ ३	० ४
गीत	र त छि न	घ री घ री	प ल प ल	बि र हा स
खम्सा	५ ०	× ०	२ ३	० ४
सरगम	स – नृ –	प – नृ –	स ग – म	प – न सं
त्रिताल	३	×	२	०
तराना	ना ऽ दीं ऽ	ता ऽ न्नों ऽ	त ना ऽ त	दीं ऽ दे रे
पञ्चक	४ ५	× ०	२ ०	३ ०
तिरवट	ता ऽ धा ऽ	ता ऽ थे ई	त ता ऽ ता	थो ऽ ति धा
छक्का	५ ६	× ०	२ ३	० ४
गीत	ता ऽ त्रे ऽ	नौ ऽ रं ग	चि था ऽ सु	नो ऽ चि त
खम्सा	५ ०	× ०	४ ३	० ४

सरगम	गं	-	रं	सं मं	-	गं	रं	सं	न	ध	प	म	ग	र	स	-
त्रिताल	३				×				२				०			
तराना	ना	ऽ	त	दा	ऽ	रे	दा	नी	नि	त	ना	रें	दिर	दिर	दीं	ऽ
पञ्चक	४		५		×		०		२		०		३		०	
तिरवट	ता	ऽ	ते	धों	ऽ	न्ना	तक	धा	तक	तक	दिग	तक	दिद	गिन	धा	ऽ
छक्का	५		६		×		०		२		३		०		४	
गीत	सों	ऽ	भ	ए	ऽ	स	ग	र	मो	रे	बै	री	खे	स	वा	ऽ
खम्सा	५		०		×		०		२		३		०		४	

उपरोक्त तालों के ठेके "राग-सागर ताल-समुद्र गीत" के साथ 'सङ्गीत' के भातखण्डे (विशेषाङ्क १९३८) में पृष्ठ ६८ पर दिये जा चुके हैं। पञ्चक, छक्का और खम्सा इनके ठेके के बदले त्रिताल का ठेका लगा कर तराना, तिरवट और गीत कोई गाऐंगे तो भी हर्ज नहीं।

नौरंग—यह शेख राहतअली का नाम है।

कृष्ण–रुक्मणि के विवाह में राग–रागिनी

"रुक्मणि मङ्गल" की कथा के प्रसङ्ग में जिस समय बारात निकासी की तैयारियां हो रही थीं, महिलाएं मङ्गल गान कर रही थीं, नगर की सजावट चकाचौंध पैदा कर रही थी। ऐसे मङ्गलमय समय में राग-रागनियां भी भगवान कृष्ण के दर्शनों का मोह न छोड़ सकीं और इस उत्सव में भाग लेने को अपने–अपने साजनों (रागों) सहित आकर मङ्गल गान करती हुई उत्सव की शोभा को बढ़ाती हैं, इसका बखान कविवर श्री० रमेशराय महाभट्ट ने राधेश्यामी तर्ज में इस प्रकार किया है।

माल कोप, भैरव सुभग, दीपक मेघ मलार।
श्री राग, हिन्डोल पुनि ये पट राग विहार॥

टोड़ी गौरी गुनकली प्रिया, खम्माच कुकुंभ है रूपवती।
है मालकोष इन पाचों का, कहलाता रक्षक प्राणपती॥
सैंधवी वङ्गाली मधुमाती, भैरवी बरारी प्यारी हैं।
ये भैरव की कहलाती हैं, सुन्दर सुकुमारी नारी हैं॥
देशी नट कान्हड़ केदार, कामोद मोद करने वाली।
ये पाच महा प्यारी कहिये, दीपक का मन हरने वाली॥
देवशाख अरु रामकली, पटमंजरी ललित विलावल हैं।
हिन्डोल राग की पत्नी ये, अति रूपवती अरु चंचल हैं॥
मारू वसन्त और धनासिरी, आसावरि मालसिरी प्यारी।
ये श्रीराग की प्रेमवती, पाचो सुकुमारी नारी हैं॥
भूपाली मल्लार देशकारी, गुजरी अरु टंक वियोगिन हैं।
पाचों ये मन हरने वालीं, प्रिय मेघ राग की कामिन हैं॥
श्री कृष्ण व्याह के उत्सव में, मङ्गल गायन करतीं आईं।
सग और वहुत सी देव वधू, नहीं वरण सकूं सुन्दरताई॥

बाजे बजत अनेक निधि, श्री गोविंद के सङ्ग।
तिनके नाम विधान कछु, बरणों ताल तरङ्ग॥

बाजे सब साढे तीन कहें, जो स्वर अरु ताल कला जानें।
सो खाल, फूंक अरु तार, अर्द्ध है स्वर हीनी सब पहिचानें॥
ढप ढोल पखावज नक्कारे, अरु तार तम्बूरा हैं प्यारे।
हैं फूक नफीरी शहनाई, बासुरी रङ्ग न्यारे–न्यारे॥
अरु ताल मॅजीरा झांझ आदि, बाजों के नाम बताये हैं।
कठ तारी जो बाजे होते, सो अर्ध नाम में आये हैं॥
इनके अतिरिक्त अनेक तरह के बाजे पड़े दिखाई हैं।
जिनके गम्भीर घोष से नहिं कछु कानों पड़े सुनाई है॥
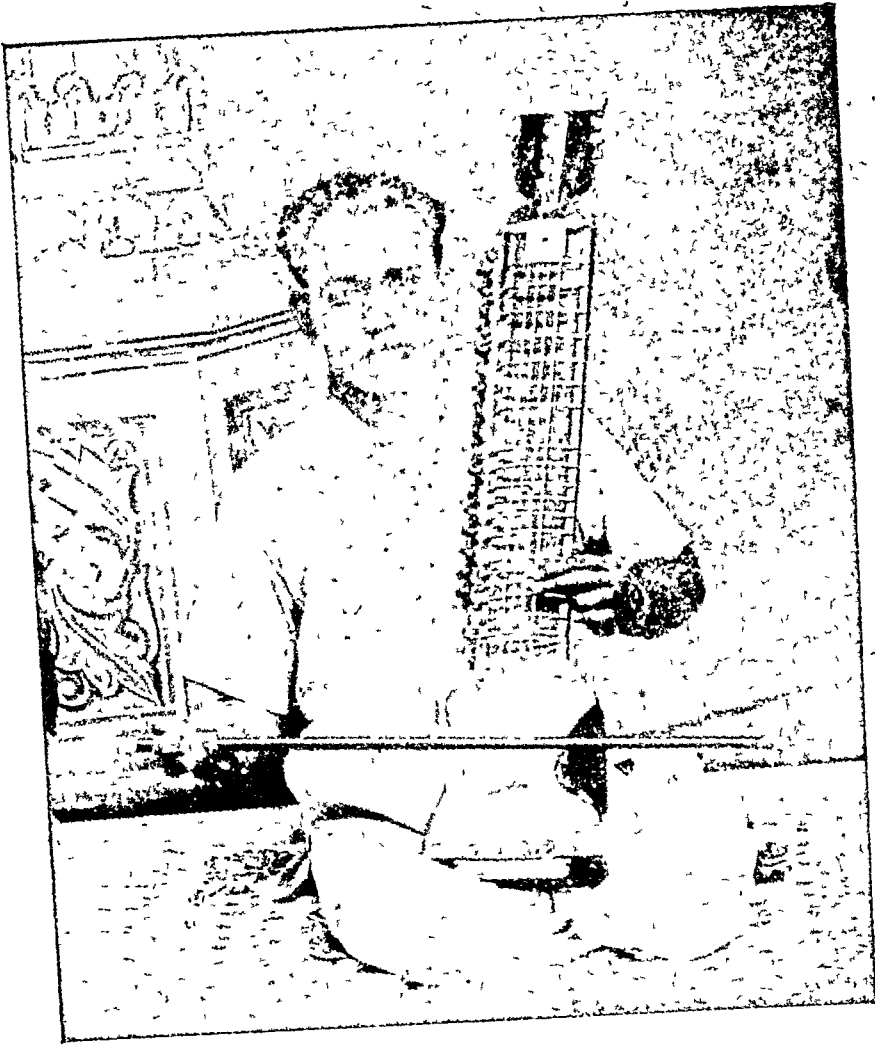
सेठ टीकमदास जी तापड़िया, जोधपुर।

इस अङ्क के लिये आपने फिल्म "विद्यापति" की एक स्वरलिपि भेजी है, जो पृष्ठ १७८ पर प्रकाशित हुई है।

पं० जयरामदास जी 'जीवन'

'पांच प्रश्नों का उत्तर' पृष्ठ १२१ पर जिस बुद्धिमता के साथ आप ने दिया है वह प्रशंसनीय है। वास्तव में आप संगीतकला के पंडित हैं।

श्रीयुत भट्ट मनमोहन राव तैलङ्ग, जयपुर।
पृष्ठ ८६ पर "ध्रुपद तिलक कामोद" के स्वरकार आपही हैं।
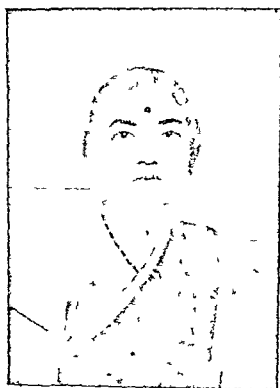
श्रीमती भट्ट चन्द्रकला एम० राव
श्री० भट्ट मनमोहन राव तैलङ्ग की आप धर्मपत्नी हैं। कन्या पाठशाला सीकर में अध्यापिका हैं। इस अङ्क में आपकी एक स्वरलिपि "ठुमरी गौड़ सारङ्ग" प्रकाशित हुई है।

शब्दकार—
कविवर "रहीम"

ध्रुपद तिलककामोद

(चारताल मात्रा १२)

स्वरलिपिकार—
श्री० भट्टमनमोहनराव तैलङ्ग

अब तो लाज तोरे हाथ, राखो शरम सैंयाँ ।
उमर सारी खेल खोई, अवगुनन की बेल बोई ।
तुम बिन नाहिं कोई, धीर को धरैया ॥ अब० ॥

स्थायी

+		०		।		०		।		।	
ऩ	प़	ऩ	स	–	स	रग	रप	मग	रग	सर	ऩस
अ	ब	तो	ला	ऽ	ज	तोऽ	ऽऽ	रेऽ	हाऽ	ऽऽ	थऽ
ऩ	प़	ऩ	स	स	स	र	म	प	ध	म	ग
रा	ऽ	खो	श	र	म	सैं	ऽ	ऽ	ऽ	याँ	ऽ
र	ग	ऩ	स	–	स	ऩस	रम	पध	मग	रग	ऩस
अ	ब	तो	ला	ऽ	ज	तोऽ	ऽऽ	रेऽ	हाऽ	ऽऽ	थऽ

अन्तरा

म	म	म	प	न	न	सं	–	सं	सं	–	सं
उ	म	र	सा	ऽ	री	खे	ऽ	ल	खो	ऽ	ई
प	न	न	न	सं	सं	पन	संरं	संरं	न	ध	प
अ	व	गु	न	न	की	बेऽ	ऽऽ	लऽ	बो	ऽ	ई

प	रं	–	रं	–	रं	न	–	सं	पन	संरं	स
तु	म	ऽ	वि	ऽ	नं	ना	ऽ	हिं	कोऽ	ऽऽ	ई
प	ध	मग	र	ग	नृस	र	म	प	ध	म	ग
धी	ऽ	रऽ	को	ऽ	धऽ	रै	ऽ	ऽ	ऽ	या	ऽ
र	ग	नृ	स	–	स	नृस	रम	पध	मग	रग	नस
अ	व	तो	ला	ऽ	ज	तोऽ	ऽऽ	रेऽ	हाऽ	ऽऽ	थऽ

सङ्गीत में नवीनता

लेखक—श्रीयुत आध्याप्रसादसिंह जी, बी० ए०

श्रीयुत आध्याप्रसाद जी प्रयाग विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हैं। आपने सङ्गीत का पर्याप्त अध्ययन किया है। पखावज बजाने में आप अद्वितीय हैं। यह लेख 'सङ्गीत' के इस विशेषाङ्क के लिये खास तौर पर आपने तैयार किया है। आपकी यह सुन्दर कृति पाठकों के सामने रखते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है।

आज इस क्रान्ति के युग में जब कि प्रत्येक दिशा में नवीनता की धूम मची है, प्रत्येक जाति तथा देश अपनी सभ्यता और संस्कृति में नये अङ्गों की सृष्टि कर रहे हैं, रात-दिन नवीन आविष्कारों द्वारा उन्नति पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, किन्तु हमारी सङ्गीत-कला जो कि एक दिन संसार की कलाओं की उच्चश्रेणी में विराजमान थी, अब नीचे गिर कर सड़ सी रही है, किसी भी कला प्रेमी को खेद हुये बिना नहीं रह सकता। इसमें उन्नति तथा आविष्कारों का तो कुछ कहना ही नहीं है बल्कि जितनी सामग्री हमारे पास है उसका भी हम उपयोग नहीं करते और यदा-कदा हम उसको जान भी पाए हैं तो उसमें कुछ बढ़ाना-घटाना नहीं जानते और चाहते भी नहीं हैं। समयानुकूल इसमें कोई परिवर्तन न होने से हमारी सङ्गीत-कला मृतः प्राय हो चली है।

सचमुच यदि देखा जाय तो संसार में परिवर्तन ही जीवन का चिह्न है। जिस भाषा में, प्राणी में, जिस संस्कृति में परिवर्तन नहीं वह मृत कही जाती है, चाहे वह कितनी ही सुव्यवस्थित और उन्नतिशील क्यों न हो। उदाहरण स्वरूप संस्कृत भाषा ही को लिया जाय, यह संसार की उच्चकोटि की भाषाओं में से है और इसका साहित्य, विश्व साहित्य में उच्चासन पर विराजमान है; किन्तु इसे मृत भाषा कहते हैं इसका कारण यही है कि इसमें परिवर्तन नहीं, नवीन अङ्गों की सृष्टि नहीं, नये शब्द नहीं बनते, नयी व्याकरण नहीं बनती। कोई आविष्कार ही नहीं हो रहा है। यही कारण हमारी सङ्गीत-कला के मृत-प्रायः होने का है। जो कुछ भी अपनी पुरानी कला को हम अपना सके हैं, उसमें परिवर्तन तो क्या, नवीनता की गंध तक नहीं लगने पाती है। हमारे सङ्गीत-आचार्य बड़े उस्ताद जिन्हें यह काम अपने हाथ में लेना चाहिए सङ्गीत में नवीनता लाने का विचार तक नहीं करते। उनके विचार से तो सङ्गीत में नवीनता लाना, अथवा नया आविष्कार करना कला का हनन करना तथा पाप है। वे अक्षर-अक्षर उसी को कला का सच्चा रूप कहेंगे, जो प्राचीन ग्रन्थों में लिखित लक्षणों से

मिले, अन्यथा सङ्गीत चाहे कितना भी मोहक कितना भी प्रभावोत्पादक हो, उसे कभी श्रेय प्राप्त नहीं हो सकता। इन आचार्यों तथा उस्तादों का ऐसा सोचने का कारण है। यह लोग अधिक तर कम पढे-लिखे होते हैं, केवल अपनी ही कला को थोड़ा बहुत जानते हुए कूप मण्डूक बने बैठे हैं। जो कुछ जानते हैं उसी को सब कुछ मानते हैं, वे ससार के अन्य देशों के सङ्गीत के बारे में तनिक भी नहीं जानते वे नहीं बता सकते कि इस ओर उन देशों में कितने आश्चर्यजनक आविष्कार हो रहे हैं।

ससार की प्रत्येक कला का ध्येय "सत्य, शिवम् सुन्दरम्" होना चाहिए। कला सत्य हो, जन साधारण की भलाई करने वाली हो तथा सुन्दर हो। सुन्दरता, कला का अंग विशेष है। इसका आदर्श परिवर्तन शील है। जो वस्तु, जो कला कल के वातावरण में सुन्दर थी, वही आज भी सुन्दर नहीं हो सकती। प्रस्तर युग के मनुष्यों का जो जङ्गलों में रहते थे, सुन्दरता का एक आदर्श था, और वर्तमान युग की सुन्दरता का भी एक आदर्श है, किन्तु इन दोनों आदर्शों में आकाश-पाताल का अन्तर है। क्यों कि तब का वातावरण अब के वातावरण से सर्वथा भिन्न है। इसलिए कला को सच्ची कला बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें वातावरण तथा समय के अनुकूल परिवर्तन हो, इसी परिवर्तन को आविष्कार कहते हैं।

हमें अपनी सगीत-कला में नवजीवन सचार करने के लिये आवश्यकता है, आविष्कारों की। नये अंगों की सृष्टि की, यदि हम आखें खोलकर देखे तो ज्ञात होगा कि पश्चिमीय जगत इस ओर कितनी उन्नति कर रहा है। रूस के सामूहिक वाद्य संगीत ने आज संगीत ससार में क्रान्ति मचा डाली है। नृत्य गान तथा वाद्यों में दिन-प्रति दिन उन्नति हो रही है! नये-नये वाद्य तथा उनकी ध्वनिया बनती जा रही हैं। वहा के विज्ञान वेत्ताओ ने सगीत की उपयोगिता को और बढा दिया है। वहा पर बहुत सी बीमारियो को दूर करने, पौधो तथा बीजो के बढ़ाने, तथा गर्भ के बच्चे पर प्रभाव डालने के लिए संगीत काम में लाया जा रहा है। इसी प्रकार और भी बहुत प्रकार की उपयोगिताओं का आविष्कार दिन-प्रति दिन होता जा रहा है। इस प्रकार संगीत के 'शिवम्' अङ्ग की पूर्ती हो रही है।

हमारे प्राचीन संगीत ग्रन्थों में भी संगीत के आश्चर्य जनक प्रभावो के बारे मे लिखा है। जैसे मल्हार के गाने से पानी का बरसना, दीपक गाने से चिराग जल जाना, वीणा के स्वर से मोहित कर मृग को पकड़ना। मेघ राग से क्षय रोग का होना तो अब भी लोग मानते हैं। उन्हीं लक्षणों के आधार पर, जो प्राचीन ग्रन्थों में लिखे हुए हैं, किन्तु लिखित प्रभाव नहीं होते। इन्हीं प्रभावों को उत्पन्न करना नया आविष्कार कहा जायेगा। हमारे सगीतज्ञ चाहे इसे कपोल कल्पित ही क्यों न मानें किन्तु पश्चिमीय जगत इस को कार्य रूपमें परिणित करने में प्रयत्न शील है और बहुत अशों तक सफल भी हो रहा है। इन प्रभावों के बारे में एकबार स्व० पं० विष्णुदिगम्बर जी से पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह सब प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु

इसमें साधना की आवश्यकता है। वे कहने लगे कि "मैंने अपने गाने से दरवाजों के शीशे तक तड़का दिये हैं।"

संगीत की यह उपयोगितायें और प्रभाव तो हमारी पुरानी निधि हैं, जिनको हम खो चुके हैं, उनको फिर ढूंढ़ निकालना ही एक बड़ा भारी परिवर्तन तथा आविष्कार हो सकताहै। यूरोप में रात दिन नये--नये वाद्य यन्त्रों की सृष्टि होती जा रही है, कोई भी सहृदय उनके वाद्य यन्त्रों को सुने तो जान सकता है कि उनके स्वर कितने प्रभावोत्पादक होते हैं। हमारे यहां तो जो सारंगी, सितार और वीणा एक हज़ार वर्ष पहिले थे वही अब भी हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं, उनकी बनावट में, स्वर की गम्भीरता में कोई नया आविष्कार नहीं हुआ। यदि हमारे संगीतज्ञ तथा वैज्ञानिक इस ओर ध्यान दें तो हमारे वाद्य-यन्त्रों में परिवर्तन और आविष्कार की काफ़ी गुन्जाइश है। अधिक प्रभावोत्पादक तथा सुन्दर स्वरों की शृष्टि की जा सकती है। हमारे भारत में जब सारङ्गी का आविष्कार हुआ था उस समय यूरोप में इसकी टक्कर का कोई यन्त्र नहीं था। किन्तु आज हमारी सारंगी वहीं रह गई। (अब तो बेचारी तिरस्कृत भी हो चुकी है) किन्तु यूरोप में उसी के आधार पर सैकड़ों तार यन्त्र बन गये। इसका कारण यही है कि हमारे संगीतज्ञ बहुत काल से आविष्कारों से उदासीन ही रहे।

आज आवश्यकता है, भारतीय संगीत में एक क्रान्ति की, और इस क्रान्ति के अधिष्ठाता होंगे हमारे उच्च वैज्ञानिक तथा शिक्षित युवक। केवल उस्तादी का दम भरने वाले उस्तादों को रोटी कमाने के लिए छोड़ कर इस कार्य को शिक्षित संगीत--प्रेमी अपने हाथों में लें तो अवश्य कुछ काम चलेगा। अभी तो देखा जाता है कि यद्यपि संगीत का पुनरोद्धार कर हमारे कुछ आचार्य, सभ्य तथा प्रतिष्ठित समाज में इसकी रुचि उत्पन्न कर रहे हैं तथापि अभी उच्च श्रेणी के प्रतिष्ठित लोग तथा वैज्ञानिक इसको अपनाने में कुछ उदासीन प्रतीत होते हैं।

मेरी विनीत प्रार्थना है कि शिक्षित समाज संगीत को अपनावे। अपनी कला की पूरी जानकारी के साथ हमको दूसरे देशों के संगीत से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उनके वाद्यों को सीखना चाहिए,तभी तुलनात्मक संगीत के अध्ययन से हम नये आविष्कार करसकेंगे। कोई साहित्यक केवल एक साहित्य के जानने से ही बड़ा साहित्यज्ञ नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार एक देश के संगीत की जानकारी से कोई बड़ा संगीतज्ञ नहीं कहा जाना चाहिए। संसार बदल रहा है। दिन-प्रतिदिन संसार के देश, जो कुछ काल पूर्व एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे; अब समीप आते जा रहे हैं, तथा सभ्यता और संस्कृति से मिलते ज़ा रहे हैं। इसलिए हमें आवश्यकता है कि हम अपनी संगीत-कला को नये आविष्कारों से अलंकृत कर समयानुकूल परिवर्तनों द्वारा विश्व की कलाओं की श्रेणी में आदर का स्थान पाने योग्य बनावें, नहीं तो भय है कि हमारी पुरानी सभ्यता की तरह पश्चिमीय जगत हमारी संगीत की कला को भी एक दिन दबा बैठेगा।

——:※:——

प्रकार २

+	२	३	४	सम
धा घिट घिट धा	ताऽ घिट घिट धाऽ	किट तक	गदि गिन	धा
२ ४ ६ ८	१० १२ १४ १६	१८ २०	२२ २४	

बराबर लय के बोल

\+ ० । ० । ।

१—धा किट तक धुम किट तक धे त्ता किटि तक गदि गिन।
२—धा किट तक धा किट तक किट धा किटि तक गदि गिन ।
३—धा किडा न धुम किटि तक धे त्ता किटि तक गदि गिन ।
४—धा धुम किट तक तकि टि तका त्तक किट तक गदि गिन ।
५—घे त्ता घिल आग तक धुम किटि, धुम किटि तक गदि गिन ।
६—द्धे घिड़ घिड़ तक धुन धा ता धा किटि तक गदि गिन ।

दुगन के बोल

	+	०	।	०
७—	धाकिट धुमकिट	तकिटत काकिट	धुमकिट धुमकिट	तकिटित काकिटि
		धुमकिट तकधुम	किटतक गदिगिन	
८—	धाकिटितक धुमकिटतक	घेत्ताऽकिट तकगदिगिन		
	धाकिटितक धुमकिटितक	घेऽत्ताकिटि तकगदिगिन		
	धाकिटतक धुमकिटतक	घेऽत्ताकिट तकगदिगिन		
९—	त्तकिन ताताकिन	तकाऽन ताताकिन	घिकिट धाकधिना	धाऽटऽ धाऽधिना
	धाऽटऽ धाऽधिना	-धाऽटऽ धाऽऽ	+ धा	

११–	+ तड़ांग घेत्ता	० घेघेऽ ताधुम	। किटतक गदिगिन	० धाधुम किटतक
	। गदिगिन धाधुम	। किटतक गदिगिन	+ धा	
१२–	+ तड़ांग धाधा	० दिगन धाधा	। घेता धगिदिन	० धाऽ घेता
	। धदिगिन धाऽ	। घेत्ता धदिगिन	+ धा	

काट छाँट के बोल ।

बोल मात्रा १२

+ तकिटि धिकिटि	० तकतक धदिगिन	। तकिटि धिकिट	० तकतक धदिगिन
। तकिटि धिकिटि	। तकतक धदिगिन	+ धा	

बोल मात्रा २२

+ धा किटितक किटि धुमकिटि धाकिटितक धदिगिन	२ धा
किटितक किटि धुम किटि धा किटितक धदिगिन	३ धा
किटितक किटि धुम	४ किट धा किटतक धदिगिन

बोल मात्रा १५

+ तकाऽत किटतक धाकिटितक नाकिटितक ताकिटितक धदिगिन		
२ तकातकिटितक धाकिटितक नाकिटितक ताकिटितक धदिगिन		
३ तकातकिटितक धाकिटितक	११ नाकिटितक ताकिटितकधदिगिन	+ धा

बोल मात्रा २२

×
धीग धिकिटित धीगधिकिटित तकनाना नुकिटित चकराधा धाधागदिगिन

२
धीगधी किटित्त धीगधी किटित तकनाना नुकिटित तकधाधा धाधागदिगिन

३
धीगधीकिटित धीगधी किटित तकनाना | ४ नुकिटित तकधाधा धाधागदिगिन ×धा

बोल मात्रा १८

×
फिड़नाकिटि धुमकिटितक धादीगिन तकधुमकिटतक धादीगिनधा घिडनाकिडान

२
फिड़नाकिट धुमकिटितक धादीगिन तकधुमकिट तकधादीगिनधा घिडनाकिड़ान

३
फिड़नाकिटि धुमकिटितक धादीगिन ४ तकधुमकिट तकधादिगिनधा घिड़नाकिड़ान ×धा

यह परन सिर्फ १ हाथ से यानी सीधे हाथ से बजेगी

१ तानिन तनाना तिट २ तानिन तनाना तिटि ३ तानिनात्ता ४ तानिनाता

१ तानिन तनाना तिटि २ तानिनाता तिटि ३ तानिन तनाना ४ तिट ता

नि १ नाता विटि नाता तिटि २ नाता तिटि तानिन ३ दिनन तिटि ४ तानिन

१ दिनन तिट २ तानिदाना तानीदाना तानिन ३ दिनाना तिट ४ तानिन तिट +ता

फिरकत की परन

+
तधुंग तक्का धुंगा त्रकिटि त्रकता कत्रत त्रकिटित ताकिटितक गदिगिन धाऽ ता धाऽ

२
तधु ग तक्का धु गा त्रकिटि त्रकता कत्रत त्रकिटितक ताकिटितक गदिगिन धाऽ ता धाऽ

३ तथुंग तक्का थुंगा त्रकिटितक ता कत्र्अत	४ त्रकिटितक ताकिटितक गदिगन धाऽ ता धाऽ

रेला परन

इसको चाहे कितनी ही मर्तबा बजाओ, मगर बोल हर समय भिन्न-भिन्न मालूम होंगे।

×
धाऽ धुमकिटि किटितक तगतिटि

२
किड़ान किटितक तगतिटि किड़नग

३
तिरकिट तागे तिटि

४
किड़नग धे

गज परन

×
धल धल धेत्त धलांग

२
धेत्त धेत्त धलांग तद्दीत किटितक

३
धेत्त धलांग

४
धिक्रिकिड़ धोतिट तक धेत धलांग

१
धेतधेत धलांग

२
थुंगाथुमाक धादिगिनथौ

३
थुंगाथुमाक धदिगिन थौऽ

४
थुंगाथुमाक धदिगिन थौ

उपरोक्त परनों के बोल बजाने की तरकीब

ता—दाहिने हाथ की चारों उँगलियों को बराबर जमा कर कनिष्ठा उँगली की तरफ से मृदङ्ग को स्याही पर कुछ जोर लगा कर पश्चात् आहिस्ते-आहिस्ते हटाने से 'ता' निकलेगा।

दी—दाहिने हाथ के अग्रभाग से छपका लगाने से 'दी' निकलेगा।

थुं—बांए हाथ से बांए की तरफ आधे हाथ से (चारों उँगलियों को) ढीले तौर पर मारने से निकलेगा। धु, धी भी ऐसे ही निकलेंगे।

ना, लां—दाहिने हाथ को पुड़ी के किनारे पर अंगूठे के पास की उँगली से जोर से बजाने से निकलेगा।

त, ग—बांए हाथ से पुड़े पर आटा लगाने के किनारे पर मारने से निकलेगा और 'त' भी ऐसे ही बजेगा।

धा—ता और थुं दोनों को एक साथ बजाने से निकलेगा।

ड़—दाहिने हाथ से पुड़ी की तरफ अंगूठे को धीरे से मारने से बजेगा।

नोट—सङ्गीत को पिङ्गल के अनुसार द्रुत २ मात्रा का, लघु ४ मात्रा का और गुरु ८ मात्रा का होता है। जिनके चिन्ह क्रम से ० । ऽ यह हैं।

अभी चौताल नामक ध्रुवपद के बजाने का प्रस्तार किया गया है। अगले अङ्कों में रुद्र, ब्रह्म वगैरह बड़ी-बड़ी तालों के प्रस्तार सेवा में प्रेषित किये जावेंगे।

मीम मल्हारी

(ध्रुपद—चौताल)

प्रेषक—श्री० वी० एन० ठकार
(प्रोफेसर आफ म्यूजिक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी)

स्थायी

+		०				०		३		४	
							प	न॒	प	ग॒	म
							ये	ऽ	स	खी	ऽ
प	–	–	प	–	प म	ध प	–	ध प	ध प	म	म
न	ऽ	ऽ	न्द	ऽ	कु	व	ऽ	र	था	ऽ	ल
ध प	न॒	ध	प	–	प	–	ध म	प ग॒	म ग॒	ध म	प
प	न	में	ऽ	ऽ	मे	ऽ	रो	ऽ	म	न	ऽ
प	ग॒	गम	ग॒	र	स	–	प	न॒	प	ग॒	म
ह	र	ऽऽ	ली	–	न्हो	ऽ	ये	ऽ	स	खी	ऽ

अन्तरा

ध	–	प	ग॒	म	म	प	स न॒	सं न॒	स न॒	सं	सं
जी	ऽ	या	आ	ऽ	कु	ला	ऽ	त	मे	ऽ	रो
स	–	–	न॒	सं	मं	ग॒ंरं	सं	सं	न॒	ध	प
नै	ऽ	ऽ	न	न	सों	नी	ऽ	र	जा	–	य
प	–	–	ग॒	म	ग॒	म	प	न॒	न॒	सं	रं
रो	ऽ	ऽ		ऽ	जि	या	को	ऽ	दू	ऽ	ख

रं	सं	रंसं	न	ध	प	—	प	न	प	ग	म
दू	ऽ	ऽन	की	ऽ	न्हो	ऽ	ये	ऽ	स	खी	ऽ

संचारी

प	—	प	ग	—	म	प	—	प	ध म	प	प
साँ	ऽ	व	रो	ऽ	स	लो	ऽ	नो	का	ऽ	न्ह
प	—	म	प	न	न	न	सं	रंसं	सं	नंध	प
बा	ऽ	ट	रो	ऽ	के	ठा	ऽ	ड़ोऽ	भ	योऽ	ऽ
प	ग	—	ग	म	प	ग	—	म	ग	र	स
मो	हे	ऽ	तो	ऽ	बु	ला	ऽ	ये	गा	ऽ	ये
न	स	ग	म	प	—	प	प	—	म	प	प
अ	ध	र	न	को	ऽ	र	स	ऽ	ली	ऽ	न्हो
प	—	प	ग	म	म	प	न	न	न	सं	सं
से	ऽ	न	से	ऽ	बु	ला	ऽ	ये	औ	ऽ	र
न	न	सं	न	सं	मं	गंरं	संन	सं	न	ध	प
मु	ख	ऽ	सो	ऽ	बु	लाऽ	ऽऽ	ये	गा	ऽ	ये
प	—	प	ग	म	म	प	न	न	न	सं	रं
बाँ	ऽ	स	री	ऽ	ब	जा	ऽ	य	क	छु	ऽ
रं	सं	रंसं	न	ध	प	—	प	न	प	ग	म
जा	ऽ	ऽदु	की	ऽ	न्हो	ऽ	ये	ऽ	स	खी	ऽ

—(*)—

कि बेंच देवी उलट गई, और साथ में मुझे भी ले बैठीं। पंडित जी तो दांत फाड़ ही रहे थे, उनके साथ ही और लोग भी खिल-खिला कर हँस पड़े।

मैं झल्ला उठा और पंडितजी से कहने लगा—"आप मुझे ध्रुपद सुनाने के लिये लाये हैं या मेरी मजाक उड़ाने और दुर्गति बनाने के लिये" पंडित जी कुछ न बोले सिर्फ दांत निकाल कर रह गये। मैंने अपने दिमाग़ की तमाम कोठरियों को तलाश किया परन्तु अपनी झेंट मिटाने का मुझे कोई उपाय नहीं मिला।

आखिरकार उसी वक्त मैंने एक खोमचे वाले को बुलाया और उससे कहा—"एक एक पैसे के दही बड़े तो बनाओ। मिर्च नमक ज़रा ऊपर से और डाल देना, हम तेज मसाला पसन्द करते हैं" बीच में ही पंडित जी बोल उठे—जरा इनके पत्ते में ऊपर से सोंठ और डाल देना"।

हम दोनों चाट के पत्ते चाट ही रहे थे कि पासही कहीं से आवाज निकली। हमारे कान खड़े होगये। मालुम हुआ रेडियो बजरहा है, हम ध्यान से सुनने लगे।

"यह दिल्ली है। अभी आप मिस उमरावज़िया बेगम का सलाम सुन रहे थे अब उस्ताद बुद्धू खां साहब आपको एक ध्रुपद सुनायेंगे।"

ध्रुपद का नाम ज्यूंही मेरे कानों में पड़ा मैं बड़े जोर से उछल पड़ा! लेकिन सिर्फ मैं ही नहीं मेरे साथ चाट का पत्ता भी (जिसको मैं चाट रहा था) उछल पड़ा। शायद वह मुझसे ज्यादा ध्रुपद सुनने का शौकीन था। लेकिन वह जरा गुस्ताखी भी कर बैठा-मेरे कपड़े तो उसने खराब किये सो किये ही मेरा मुंह भी पोत दिया और इतना ही नहीं वह बदतमीज पंडित जी पर भी जापड़ा। ऐसी खुशी भी किस कामकी। ओफ रे ध्रुपद का जोश!

इस बार पंडित जी जरा बिगड़े, कहने लगे "यार। आदमी हो या पाजामा! ध्रुपद का नाम सुना नहीं कि उछल पड़े। मैंने जभी तो कहा था कि ध्रुपद सुनते ही नाचने लगोगे।

मैंने कहा—'तुम्हें तो अपनी ध्रुपद पर इतना नाज था कि खुशामद करने पर भी नहीं सुनाते थे। अब जब कि बिना कहे सुने ही ध्रुपद सुनने को मिल जाये तो फिर भला खुशी क्यों न हो? पंडित जी चुप हो गये शायद वह मेरी बात मान गये थे।

ध्रुपद का गाना क्या था यह तो मुझे याद नहीं रहा क्योंकि न तो वह अच्छी तरह समझ में आया और न पसन्द ही आया। कुछ अजीब ही तरह का था। मुझे तो ऐसा मालुम होता था कि शायद गाने वाला सन्निपात का रोगी है, इसीलिये व्यर्थ ही गला फाड़ रहा है। मुझे तो उसके गाने पर कभी क्रोध आता था कभी हसी। लेकिन पंडित जी का सिर बड़े मज़े से हिल रहा था।

गाना समाप्त होने पर मैंने कहा—"पंडित जी! हमें तो कुछ भी आनन्द नहीं आया। तुम तो कहते थे कि ध्रुपद सुन कर नाचने लगोगे, लेकिन हम पर तो कुछ भी असर नहीं, हां तुम्हारी खोपड़ी ज़रूर बन्दर की डुगडुगी की तरह हिल रही थी।

पंडित जी बोले—"बस-बस मालुम होगया तुम पूरे ढपोल-शंख हो, संगीत को समझते ही नहीं। इस कला में तो उन्हीं को आनन्द आता है जो कुछ जानते भी हैं।

"अच्छा यह बात है? तब तो हमें कुछ बातें ध्रुपद की अवश्य जाननी चाहिए।"

"हां! सबसे पहले ध्रुपद का ठेका याद करलो। लो मैं तुम्हें बताता हूँ।" मेरी पीठ पर ताल देते हुए पंडित जी अपने श्रीमुख से फरमाने लगे—

"धा धा धिन ता किट धा धिन्ता किटतिक गदि गन धा-ये सम आ गई, सम की ताल कुछ ऐसी जोरदार पड़ी कि मैं तिलमिला उठा और पीठ को सहलाते हुए बोला—"माफ़ करो बाबा, मैं ऐसी ध्रुपद सीखना नहीं चाहता।"

"वाह! अभी से घबरा गये। अगर ध्रुपद सीखना है तो मुसीबतें भी सहनी ही पड़ेंगी। बिना दुख के सुख कहां मिलता है?"

पंडित जी की यह बात मैं मान तो गया लेकिन यह शर्त करली कि ताल ज़ोर से न दें। कुछ दिनों तक इसी तरह रयाज़ होता रहा। और मैं समझ गया कि अब मुझे ध्रुपद आगया है, अब बाकी था सिर्फ उसका अभ्यास, वह घर पर बैठे-बैठे हो सकता था। पंडित जी तो कह रहे थे कि इसे सीखने में बहुत समय लगता है लेकिन मेरा शौक़ इस क़दर बढ़ा हुआ था कि मैं फौरन ही सीख गया।

अब हम घर लौटे। मुझे डर था कि कहीं घर पर महाभारत शुरू न हो जाये, क्यों कि मेरी श्रीमती जी का मिजाज़ द्रुतलय में रहता था। वे हिटलर और मुसोलिनी से किसी बात में कम नहीं थी। जो दशा आज कल कांग्रेस और मुसलिम लीग की है, ठीक वही दशा हमारे घर में मेरी और श्रीमती जी की थी। मैं शेखचिल्ली की तरह रास्ते भर ख्याली पुलाव पकाता हुआ जा रहा था। सोचता था कि अगर श्रीमती जी नाराज़ भी हुई तो एक ध्रुपद सुनाकर उन्हें खुश कर दूंगा।

लेकिन ज्यूंही मैंने घर के अंदर कदम रक्खा तो क्या देखता हूँ कि श्रीमती जी आंगन में एक चारपाई पर बैठी हुई हैं और उनके हाथ में एक बड़ा चाकू खुला हुआ है। मैं तो देखते ही सन्न हो गया! समझ गया, अब खैर नहीं। डर के मारे मेरी धोती भी खिसकी जा रही थी-एक तो मोटे खद्दर की धोती, दूसरे श्रीमती जी का डर-फिर भला वह बेचारी क्यों न जान बचाकर भागने की कोशिश करती। बड़ी मुशकिल से उसको सम्हालते हुए मैं आगे बढ़ा। मौक़ा उपयुक्त जानकर मैंने ध्रुपद शुरू कर दी। लेकिन ध्रुपद की स्थाई भी शुरू न हो पाई थी कि श्रीमती जी भड़भड़ाती हुई भकभकाते हुए इंजन की तरह मेरी तरफ झपट कर आईं और बोलीं:—

"कहां थे अब तक?"

"मैंने कहा:—धा धा धिन······

"कुछ घर की भी फिकर है?"

"मैं बोला—किट तक धिन······

'अरे क्या भांग खाई है, जो कुछ का कुछ बड़ बड़ा रहे हो?"

वह शायद कुछ और भी कहतीं लेकिन मैं बीच ही में बोल उठा "अरे सुनो भी। मैं आज ध्रुपद सीख आया हूँ। बड़ी अच्छी चीज है। तुम सुनोगी तो फड़क उठोगी।" मैंने बिना श्रीमती जी का उत्तर पाये ही ध्रुपद अलापना शुरू कर दी। ज्यूं ही मैंने

कान पर हाथ रखकर बड़े ठाठ से मुह फाड़ कर आआ ' करनी शुरू की कि श्रीमती जी घबरागई। घबराई ही नहीं बल्कि डर भी गई। कहने लगी "अरर"·····क्या हो गया, अरे इन्हें क्या हो गया ?" ···· वे इसी प्रकार चिल्लाती रहीं और मैं अपनी धुन में मस्त था। वास्तव में मैं अपना कमाल उन्हें दिखाना चाहता था कि मैं ध्रुपद गाने में ऐसा तन्मय होजाता हूँ कि किसी भी बात की खबर होनहीं रहती। दर असल बात भी यही थी उस वक्त तो खासकर मैं ऐसा ही तन्मय हो रहा था कि मुझे यह भी मालुम न हुआ कि श्रीमती जी की हाय तोबा सुन कर पास पड़ौस के लोग भी घर मे आकर जमा हो गये थे। चूंकि मैं गाव में "काका" के नाम से प्रसिद्ध था इसलिये हर एक यही चिल्ला रहा था "काका क्या हुआ ? काका को क्या हो गया ···· ·· "

मैं बड़ा हैरान था, कि आखिर यह मामला क्या है ? कई लोगों ने मुझे जकड़ कर पकड़ रक्खा था-मैं छुड़ाने की कोशिश करता मगर छुड़ा नहीं सकता था। बच्चे डर से मेरे पास भी नहीं फटकते थे। मैंने झुंझलाकर कहा—"अरे ! तुम सब लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो। क्या तुमने मुझे पागल समझ रक्खा है ? मैं तो अच्छा खासा हूँ और ध्रुपद गा रहा हूँ—

उनमें से एक ने कहा-"ना बाबा। रहने दो अपनी ध्रुपद को। हमें नहीं सुनना! देखो न काका तुम्हारी वह कैसी घबरारही है!"

मैंने देखा तो सचमुच श्रीमती जी एक तरफ सहमी हुई खड़ी थीं। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ कि यह लोग कैसे जाहिल हैं जो संगीत में जरा भी नहीं समझते। लेकिन खैर श्रीमती जी का दिमाग तो ज़रा ठिकाने आ ही गया-कम से कम एक लाभ तो मेरे ध्रुपद गाने से अवश्य हुआ।

सब लोग धीरे-धीरे मेरे मकानसे निकलने लगे। श्रीमतीजी मेरे पास आकर कहने लगीं-"कल तुम जरूर किसी हकीम या डाक्टर के पास चले जाना, जहा तक हो जल्दी ही इस बीमारी की दवा करनी चाहिये। वरना बढ़ जाने से ज्यादा तकलीफ होगी।

मैंने श्रीमती जी को बहुत समझाया कि यह कोई रोग नहीं है, लेकिन उनकी छै इच की खोपड़ी में यह बात कैसे समाती। वह अपने आगे किसी की सुनती ही नहीं थीं। मैंने बड़ी कोशिश करके उस वक्त तो उन्हें शान्त किया और जाकर सो रहा।

सुबह पडित जी आए तो उनसे मैंने रात का सारा माजरा कह सुनाया। वह सुनकर बड़े हसे और बोले- काका! तुमने भी सबको खूब तमाशा दिखाया। अब हम तुम्हें काका नहीं "धुरपदिया काका" कहा करेंगे। क्यों खुश हो न ? यह कहकर वह फिर हंसने लगे और वहा से चल दिए। मैं चुपचाप बैठा हुआ अपने दिमागी घोड़े दौड़ा रहा था इतने में ही श्रीमती जी आई और कहने लगीं-"क्या वैद्यजी के पास अभी तक नहीं गए ? हा पडित जी ने क्या कहा ? क्या इन्होंने कोई दवा बताई है ?

मैंने कहा—"दवा तो नहीं, हा उन्होंने मेरा एक नया नाम रक्खा है।"

"वह बोलीं क्या ?"

मने कहा—"धुरपदिया काका"

—※—

शब्दकार—
अज्ञात

राग भैरव

(चौताल मात्रा १२)

स्वरकार—
श्री० धुं० वि० मोकाशी

पूजी हो गणेशा कोय हे गुनी ॥ धृ० ॥
अष्ट सिध नवा निध ता कैय तोहे ।
भाराऩ्न पोखान्न धानी ॥ १ ॥

स्थायी

०		।		।		+		०		।	
म	–	–	प	–	प	ध	–	–	प	–	म
पू	ऽ	ऽ	जी	ऽ	हो	ग	ऽ	ऽ	णे	ऽ	शा
ग	–	र	–	रग	मप	म	–	–	र	–	–
को	ऽ	य	ऽ	हेऽ	ऽऽ	गु	ऽ	ऽ	नी	ऽ	ऽ

अन्तरा

+		०		।		०		।		।	
म	–	प	ध	–	न	न	न	सं	–	सं	–
अ	ऽ	ष्ट	सि	ऽ	ध	न	वा	ऽ	ऽ	नी	ऽ
ध	–	–	नसं	–	–	रं	–	–	नसं	ध	प
ध	ऽ	ऽ	ताऽ	ऽ	ऽ	कै	ऽ	ऽ	यतो	हे	ऽ
ग	म	प	ध	–	प	धन	संन	संन	रंध	–	–प
भा	ऽ	ऽ	रा	ऽ	न्न	पोऽ	ऽऽ	ऽऽ	खाऽ	ऽ	ऽन्न
ग	म	–	र	–	स	म	–	–	प	–	प
धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नि	पू	ऽ	ऽ	जी	ऽ	हो

ध्रुपद की उन्नति कैसे होगी ?

(लेखक —श्रीयुत, वि० अ० कशालकर म्यूजिक प्रोफेसर)

वर्तमान सङ्गीतज्ञ ध्रुपद की कितनी वे कदरी कर रहे हैं और इसका परिणाम कितना भयकर होगा, इसे पूर्ण रूप से इस लेख में दिखलाया गया है। साथ ही ध्रुपद की उन्नति के कुछ उपाय भी बताये गये है। श्री० कुशाल कर जी भारतवर्ष के प्रमुख सङ्गीतज्ञों में से हैं। आपका सङ्गीत–साहित्य पर कितना अच्छा अधिकार है, यह आपके इस विद्वता पूर्ण लेख से भली भाति प्रकट होता है।

(सम्पादक —)

इस विषयमें किसीका मतभेद हो ही नहीं सकता कि पूर्वकाल में ध्रुपद की गायकी सर्वोच्च समझी जाती थी। सुप्रसिद्ध गायक तानसेन के काल में ख्याल की गायकी भारत वर्ष में आई ही थी। तानसेन के गुरू महान सङ्गीतज्ञ श्री० हरीदास स्वामी और उन्हीं के समय कालीन गायनाचार्य वैजूबावरे आदि के गीत, जो अब भी कहीं–कहीं सुनने में आते हैं, वे सब ध्रुपद के या ध्रुपद के अङ्ग यानी झपताल या सूल आदि तालों के हैं। इससे मालुम होता है कि तब तक यही एक गान पद्धति प्रचलित थी। वही पद्धति उच्च श्रेणी की समझी जाती थी, और वही पद्धति मधुर भी मालुम होती थी। तब तक पसंद या नापसंदगी के प्रश्न के लिये अन्य कोई पद्धति ही नहीं थी। तब गायक–वर्ग और श्रोता वर्ग सभी ने इसी को पूर्ण रूप से अपनाया।

उस काल में लोगों के रहन सहन का विचार करते हुए यह न भूलना चाहिए कि वर्तमान समय के अनुसार केवल अपना पेट भरने के लिये जो हाय–हाय आजकल करनी पड़ती है, यह बात तब नहीं थी, लोगों के दिलों में शान्ति थी, वे प्रसन्न चित्त रहते थे उनका स्वास्थ्य सुन्दर था। अब जब कि मन को शान्ति नहीं, स्वास्थ्य ठीक नहीं, तो गायन कला सीखना तो दूर-रहा सुनना भी प्रिय नहीं लगता। मन शान्त होने से ही स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा,जोकि ध्रुपद गायकी के लिये अति आवश्यक है। क्यों कि ध्रुपद गाने के लिये आवाज बड़ी गभीर होनी चाहिए, और वैसी गभीरता प्राप्त करने के लिए अभ्यास की भी आवश्यकता है। स्वर साधन का अभ्यास बिना उत्तम स्वास्थ्य के हो नहीं सकता। उस समय आज कल जैसी तान पद्धति नहीं थी। उस समय आलाप चारी थी और वह भी विलम्बित लय में। यही ध्रुपद पद्धति की विशेषता है। इन बातो से जो परिचित हैं वे कल्पना कर सकते है कि विलम्बित लयमें प्रत्येक स्वर पर कई आवृतितक ठहरना कितना कष्टसाध्य और मुश्किल काम है। ध्रुपद पद्धति के मधुर होने का एक कारण यह भी है कि आलाप के गाने मे तानों की जल्द बाजी तो होती नहीं बल्कि राग का शुद्ध स्वरूप विस्तृत रूप से आलाप द्वारा दिखा कर राग माधुर्य कायम रखना पड़ता है।

स्वस्थ्य शरीर, शान्त मनोवृति जो कि स्वर-साधन के लिए अति आवश्यक है, उसका अभाव हो जाने से न तो अब वह स्वर-माधुर्य रहा, न आवाज़ में गम्भीरता रही और न आवाज में वह कस रहा। जल्दबाजी की वजह से राग का स्वरूप भी नहीं मालुम होता। इन कारणों से धीरे-धीरे ध्रुपद की गायकी नष्ट होती गई और जो कुछ थोड़ी बहुत बची थी सो भी रसहीन होने के कारण अप्रिय हो गई।

इधर कुछ समय से भारतवर्ष के कई प्रान्तों में सङ्गीत सम्मेलन होने लगे। इन जलसों में जो गायक गण एकत्रित होते उनमें ध्रुपद गायकों क गिन्ती नहीं केवरावर होती और यदि कोई ध्रुपद गायक भूले भटके पहुंच भ जाते तो श्रोतागण उनका उचित सम्मान नहीं करते, क्यों कि ध्रुपद में जनता को आकर्षित करने की क्षमता नहीं रही।

इतना सब होते हुए भी अब लोगों के हृदय में ध्रुपद का अभाव खटक रहाहै, और इसके प्रति इच्छा का प्रादुर्भाव हो गया है। वे चाहते हैं कि कभी-कभी सङ्गीत सम्मेलनों में तो ध्रुपद सुनने को मिल जाना ही चाहिए। ध्रुपद कला के लिए यह शुभ चिह्न हैं और इसी आधार पर हम कह सकते हैं अब वह दिन दूर नहीं जब कि ध्रुपद को प्राचीन गौरव प्राप्त हो जायगा।

अब यह विचार करना है कि कौन-कौन उपायों का अवलम्बन करने से ध्रुपद कला का उद्धार हो सकेगा और क्या करने से इस मृत प्रायः गायकी को उच्च-स्थान प्राप्त हो सकेगा ?

आज कल सङ्गीत परिषदों में, सिनेमा कम्पनियों में तथा रैडियो सङ्गीत में ध्रुपद गायकों का कोई स्थान ही नहीं है। सर्वत्र Popular Music "आम फ़हम गानों" का ही बोलबाला है। रैडियो प्रोग्राम देखिए तो पता चलेगा कि सब से अधिक गज़ल उस से कुछ कम भजन, और ठुमरी वा प्रेम गीत, और उस से कम कोई छोटा सा ख्याल। बस। ध्रुपद कहीं ढूंढ़े न मिलेगा। यही हाल सिनेमा सङ्गीत का है, मान लिया जाय कि सिनेमा संङ्गीत में किसी दूसरे ही सङ्गीत की आवश्यक्ता होती है, फिर भी किसी "राज दरबार" के सीन में भी ध्रुपद गाया हुआ नज़र नहीं आता।

सबसे पहिले हमें इन्हीं क्षेत्रों में आन्दोलन करना होगा, रैडियो और सिनेमा तथा सङ्गीत सम्मेलनों द्वारा ध्रुपद की उन्नति बहुत कुछ हो सकती है। इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं।

रैडियो डाइरेक्टर्स को चाहिए कि वे भारतवर्ष की इस प्राचीन पद्धति की उन्नति में सहायक हों, उनसे हमारा निवेदन है कि वे भारतवर्ष के अच्छे-अच्छे ध्रुपद विशेषज्ञों को तलाश करके बुलावें और रैडियो का एक स्वतन्त्र "ध्रुपद विभाग" कायम करें। रोज़ाना एक नियमित समय के लिए उनका प्रोग्राम रखें। ऐसा होने से जनता की रुचि बढ़ेग। जब लोगों को इसमें आनन्द आवेगा तो सीखने की रुचि भी पैदा होगी, इस प्रकार ध्रुपद गायकों की मांग बढ़ जाने से इसका शीघ्र ही प्रचार भी हो जायगा।

इसी प्रकार फिल्म म्यूज़िक डाइरेक्टरों से भी प्रार्थना है कि राज दरबार आदि के

खास दृश्यों में ध्रुपद का गाना अवश्य रक्खें, उस सीन की उपयोगिता भी बढ़ेगी और दर्शकों को आनन्द भी आवेगा। हम नहीं समझते कि राज दरबार के सीनों में प्रेमगीत और अश्लील गजलों को क्या सोच समझ कर स्थान दिया जाता है।

सङ्गीत सम्मेलनों में ध्रुपद गायकों के लिए अलग-अलग स्थान की अति आवश्यकता है और यह कार्य उसके प्रबन्धक बड़ी आसानी से कर सकते हैं किन्तु उन्हें ध्यान रखना होगा कि ऐसे ध्रुपद के गायकों को ही स्थान दिया जावे जिनको इस कला का वास्तविक ज्ञान हो, आवाज़ में गम्भीरता हो और जो जल्द बाजी से परे हों।

१०-१५ वर्ष पहिले नृत्य कला की भी ऐसी ही दुर्दशा थी, लेकिन आज देखिए वह कितनी उन्नति पर है। पहिले समय के संगीत परिषदों में नृत्य का कोई स्थान ही नहीं था, लेकिन अब देखिए वर्तमान सङ्गीत सम्मेलनों में नृत्य प्रतियोगिता का एक अलग ही विभाग रहता है, दर्शकों और श्रोताओं में नृत्य के प्रति कितनी गहरी दिलचस्पी पैदा हो गई है, और फिल्म तो आपको शायद ही कोई ऐसा मिले जिसमें २-४ डान्स न हों। यही हाल ध्रुपद का है, जनता में ध्रुपद गायकी की ओर रुचि उत्पन्न करने की आवश्यकता है, और यह काम सङ्गीत सम्मेलन, रेडियो और सिनेमा द्वारा भली प्रकार हो सकता है, आरम्भ में कुछ कठिनाई भी होगी किन्तु उसकी परवाह न करते हुए इसकी उन्नति में अग्रसर रहना होगा, फिर देखिए कि जनता की इस ओर कैसी रुचि बढ जाती है।

शब्दकार व स्वरकार—
बाबूलाल सारस्वत "सङ्गीतरत्न"

प्रेम गीत

ताल कहरवा
(मात्रा ८)

साजन आवो प्रेम मन्दिर में ।
प्रेम पुजारी आवो आवो ॥
(अन्तरा १)
प्रेम ही दरिया प्रेम ही नैया ।
प्रेम ही खेवन हारा ॥
हिल मिल कर सब भूल रहे हों ।
प्रेम के प्रेमी प्रेम भंवर में ॥
(अन्तरा २)
प्रेम ही काया प्रेम ही माया ।
प्रेम बिना जग सूना ॥
प्रेम ही सार जगत का साजन ।
प्रेम बिना नहीं सुख जीवन में ॥

०				×				०				×			
स	प	प	पध	म– (ग)	म– (ग)	ग	र	स	र	म	म	प	प	पम	प
सा	ऽ	ज	नऽ	आ	ऽ	वो	ऽ	प्रे	ऽ	म	म	दि	र	मेंऽ	ऽ
ध	–	ध	धप	प	न	–	धपम	म	–	पध	पम	ग	–	र	स
प्रे	म	पु	जाऽ	ऽ	री	ऽ	ऽऽऽ	आ	ऽ	वोऽ	ऽऽ	आ	ऽ	वो	ऽ

अन्तरा

ग	–	ग	ग	ग	ग	गर	स	र	ग	म	प	ग	र	स	–
प्रे	म	ही	द	रि	या	ऽऽ	ऽ	प्रे	ऽ	म	ही	नै	या	ऽ	ऽ
र	म	म	प	–	ध	ध	सं	–	सं	सं	संन	धप	मग	रस	स–
प्रे	म	ही	खे	ऽ	व	न	हा	ऽ	ऽ	ऽ	राऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ

												न		न	
स	रं	रं	र	र	र	रं	रं	र	गं	रं	सं	र	–	सं	–
हि	ल	मि	ल	क	र	स	व	कू	ऽ	ल	र	हे	ऽ	हों	ऽ
स	सं	रं	न	–	ध	–	पम	म	–	ध	प	ग	ग	र	स
प्रे	म	के	प्रे	ऽ	मी	ऽ	ऽऽ	प्रे	ऽ	म	भं	व	र	में	ऽ

इसी प्रकार दूसरा अन्तरा भी बजेगा।

राग-भूप

शब्दकार—
अज्ञात्

चौताल मात्रा १२

स्वरकार—
डा०-अनन्दरामसिंह तोमर

स्थाई—आपस में करत शोर, पञ्छी वन वोले मोर।
अन्तरा-कारि कारि घटा छाई, वरसन लागी घन घोर॥

+		०		।		०		।		।	
आ	ऽ	प	स	में	ऽ	क	र	त	शो	ऽ	र
सं	–	ध	प	ग	प	ध	प	ग	र	स	र
पं	ऽ	छी	ऽ	व	न	बो	ऽ	ले	मो	ऽ	र
ग	–	ग	–	ग	प	ध	प	ग	र	स	र
का	ऽऽ	रि	क	ऽ	रि	घ	ऽ	टा	छा	ऽ	इ
ग	रग	प	ग	प	ध	प	ध	सं	सं	र	स
व	र	स	न	ला	गी	घ	ऽ	न	घो	ऽ	र
ग	रं	सं	ध	र	सं	ध	प	ग	र	स	र

राग-विवरण:—यह औडव जातिका मनोहर राग है म नि वर्जित है। कोई-कोई इसमें म वलित करें पाडव मानते हैं। गान समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। वादी गन्धार और सम्वादी धैवत है।

आरोहावरोह—स र ग प ध सं। सं ध प ग र स।

पकड़—गर, सध, सरग, पग, धपग, र, स.

सूरदास की ध्रुपद

राग हिन्डोल (चौताला मात्रा १२) जाति औढ़व

गीत

यशोमति दधि मथन कर वैठे वीर धाम ओरि ठाड़े हरि यस निहारे सुन्दर छवि राजे।
चितवन चित रहि लोभाय, शोभा कछु कहि न जाय, मुनिनके मन हरलीन्हे मोहनी दलसाजे॥
जननी कहे नाचो लाल, देऊंगी नवनीत नुत्ता रुनुन् रुनुन्-भुनुन् भुनुन् पायनि बाजन वाजे।
गावत गुण सूरदास, सुख बढ़त भूम आकाश, नाचत त्रिलोकनाथ माखन के काजे॥

+		०		१		०		२		३	
म॑	ध	सं	सं	सं	सं	न	ध	म॑	म॑	ग	ग
य	शो	म	ति	द	धि	म	थ	न	क	ऽ	र
म	ग	ग	ग	म॑	म॑	गस	ग	स	स	स	स
वै	ऽ	ठे	ऽ	वी	ऽ	रऽ	धा	ऽ	म	ओ	रि
स	स	ग	ग	ग	ग	न	न	ध	म॑	ग	ग
ठा	ऽ	ड़े	ऽ	ह	रि	य	स	नि	हा	ऽ	रे
गं	गं	सं	सं	सं	सं	म॑ध	न	धम॑	ग	म॑ग	स
सुन	ऽ	द	र	छ	वि	राऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	जे
म॑	ध	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं	सं
चि	त	व	न	चि	त	र	ही	ऽ	लो	भा	य

मं	ध	सं	सं	स	सं	न	ध	मं	मं	ग	ग
शो	ऽ	भा	ऽ	क	छु	क	हि	न	जा	ऽ	य
स	स	स	ग	ग	ग	न	न	ध	ध	मं	ग
मु	नि	न	के	म	न	ह	र	ली	ऽ	ऽ	नै
गं	गं	सं	सं	म	म	मंध	न	धमं	ग	मंग	स
मो	ऽ	हि	नी	द	ल	नाऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	जे

(३–४)

सस	–ग	ग	ग	न	न	न	न	धध	–ध	धध	–ध
जन	ऽनी	क	हे	ना	चो	ला	ल	देऊं	ऽगी	नव	ऽनी
मं	मंमं	मं	ग	मंमं	–मं	गग	–ग	मंग	–स	सस	–स
त	त्तुत्	ता	ऽ	रुनु	ऽन्	रुनु	ऽन्	झुनु	ऽन्	झुनु	ऽन्
स–	सस	ग–	गग	मं	धन	धमं	ग	मंमं	ग	स	स
पाऽ	यनि	वाऽ	जनि	वा	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	जे
मं–	धध	स	र्सस	सं	स	सं	सं	न	न	ध–	धध
गाऽ	वत	गु	णऽ	सू	र	दा	स	सु	त	वऽ	ढत
मं	मं	ग–	गग	स	स	ग	गग	मं	ध	सं	सं
भू	म	आऽ	काश	ना	च	त	त्रिऽ	लो	क	ना	थ

गं गं	संसं सं	मध न	धम ग	मम ग	स स
मा ऽ	खन के	का ऽ	ऽऽ ऽ	ऽऽ ऽ	जे ऽ

द्रुत लय (३, ४)

सस गगग	नन नन	धधध धधध	ममम मग	ममम गगग	सगस ससस
जन नीकहे	नाचो लाल	देऊंगी नवनी	तनुत् ताऽ	रुनुन् रुनुन्	झुनुन् झुनुन्
ससस गगग	मधन धमग	ममग सस	मधध संसंसं	संसं संसं	नन धधध
पायनि बाजनि	बाऽऽ ऽऽऽ	ऽऽऽ जेऽ	गावत गुणऽ	सूर दास	सुख वढ़त
मम गगग	सस गगग	मध संसं	गंगं संसंसं	मधन धमग	ममग सस
भूम आकाश	नाच तत्रिऽ	लोक नाथ	माऽ खनके	काऽऽ ऽऽऽ	ऽऽऽ जेऽ

—o—

देवी-कामना

(लेखक—श्री० बलदेवाग्निहोत्री, साहित्याचार्य वैदिक धर्म विशारद,)

ध्रुवं पदं स्याद्ध्रुपदाङ्क सम्पदा, सङ्गीत–पत्रस्य महोदयस्य वै ।
स्वस्मिन्नियोगे यततेऽनिशं मुदा, सङ्गीत सेवानिहितात्ममानसम् ॥

सङ्गीत ! सङ्गीत !! हमें तो अपनी इस देवी–कामना के परिपूर्ण होने का सवा–सोलह आने विश्वास है कि निज-भक्तों को मान-दान प्रदान करने वाले, वेद-प्रकाश द्वारा सङ्गीत के आदि-मूल जगदाधाराध्यदेव, ऐसी ही अनुकम्पा करेंगे कि सङ्गीत–सेवा में अपने मानस को समर्पित कर सर्वदा आनन्दोल्लास-पूर्वक आत्म-कर्त्तव्य में प्रयत्नशील महान्-उदय-सम्पन्न तू अपने इस ध्रुपदाङ्क द्वारा जगती-तल पर निश्चय ही ध्रुव–पद को अधिगत करने में सौभाग्यशाली हो, और फिर हो !!!

—शुभेच्छु,
बलदेवाग्निहोत्री ।

क्या वह स्वभाव पहिला, सरकार अब नहीं है ?

(श्री० "बिन्दु" जी शर्मा "सङ्गीत भूषण")

क्या वह स्वभाव पहिला सरकार अब नहीं है ? दीनों के वास्ते क्या दरबार अब नहीं है ?
या तो दयालु मेरी दृढ दीनता नहीं है, या दीन की तुम्हें ही दरकार अब नहीं है ?
पाते थे जिस हृदय से आश्रय अनाथ लाखों, क्या वह हृदय दया का भण्डार अब नहीं है ?
जिससे कि द्विज सुदामा त्रैलोक्य पा गया था, क्या उस उदारता में कुछ सार अब नहीं है ?
दौड़े थे द्वारिका से जिस पर अधीर होकर, उस अश्रु 'बिंदु' से भी क्या प्यार अब नहीं है ?

प्रार्थना (ध्रुपद)

(श्री० चन्द्रशेखर पाण्डेय "चन्द्रमणि")

जय जय रघुवंश-वीर, सुन्दर श्यामल शरीर,
काधे सोहत तूणीर, संतत सुषमाभिराम।
रघुकुल-मणि रत्न दीप,
सीता लक्षण-समीप,
मंगलकारी महीप, छाजत छवि कोटिकाम।
राजत राजीव नैन,
बोलत अति मधुर बैन,
'चन्द्रमणि' कल्याण देन, प्रतिपल तुमको प्रणाम।

पद

दुखिया सब संसार ! प्यारे दुखिया सब संसार !!
मोह का दरिया लोभ की नैया, कामी खेवनहार खिवैया।
धारा के बल चल निकले थे, आय फंसे मझधार॥ प्यारे०॥
तन के उजले मन के मैले, धन की धुन है सवार।
ऊपर—ऊपर राह बतावें, भीतर से बटमार॥ प्यारे०॥

प्रेमगीत (श्री० बाबूलाल सारस्वत 'सङ्गीतरत्न")

बतादे प्रेम नगर की राह, प्रेम पुजारी प्रेम पुजारी।
प्रेम नगर के रहने वाले, प्रेम भिखारी होते हैं।
रमते हैं वन वन में लगाकर प्रेम नगर की राख॥ बतादे०॥
प्रेम नगर के रहने वाले, पागल प्रेमी होते हैं।
खोकर सुध-बुध छानने दर-दर प्रेम नगर की खाक ॥बतादे०॥

ध्रुवपद

(लेखक—श्री० पं० नरायणदत्त जोशी, ए. टी. सी.)

अनूप सङ्गीत रत्नाकर में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

गीर्वाण मध्य देशीय भाषा साहित्य राजितम् ।
द्विचतुर्वाक्य सम्पन्नं नरनारी कथाश्रयम् ॥
श्रंगार रस भावाद्यं रागालाप पदात्मकम् ।
पादान्तानु प्रासयुक्तं पादान्त युगकंचवा ।
प्रतिपादं यत्रवद्धमेवं पाद चतुष्टयम् ।
उदग्राह ध्रुवका भोगान्तरं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

अर्थात्-संस्कृतमिश्रित मध्यदेश की भाषा साहित्य से परिपूर्ण हो। जिसमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धी कथा हों। शृङ्गार रस-पूर्ण हो। जिसके पद राग आलाप पूर्ण हों। पादान्त में अनुप्रास हो। अर्थात् चरण के पदों के अंत में मेल (तुकबन्दी) हो। स्थाई व अन्तरा अथवा स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग इन चार चरणों से युक्त (सम्मिलित) हो उसे ध्रुवपद कहते हैं।

आधुनिक काल में निम्नलिखित रीतियों(Styles) से गाना गाया जाता है। ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, चतरङ्ग, होरी, गज़ल, लावनी, मर्सिया इत्यादि।

ध्रुवपद—ध्रुवपद का गाना कब से शुरू हुआ,यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर एतिहासिक दृष्टि से यह माना जाता है कि यह प्रायः ५०० वर्षों से लोक-प्रिय रहा है, अकबर बादशाह के दरबार के सब ही सु-प्रसिद्ध गायक जिनमें प्रमुख तानसेन जी माने जाते हैं, ध्रुवपद ही के गाने वाले कहे गये हैं।

ख्याल, ठुमरी, इत्यादि की अपेक्षा ध्रुवपद अधिक विस्तृत है, ख्याल,ठुमरी, इत्यादि में केवल स्थाई और अन्तरा दो ही चरण होते हैं, किंतु ध्रुवपद में चार चरण अर्थात्-स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग होते हैं। ध्रुवपद का गाना गंभीर और मर्दाना गाना समझा जाता है। इसकी भाषा ऊंचे दरजे की होती है और इसके गाने अधिकतर वीर, शृङ्गार अथवा शान्ति-रस प्रधान के होते हैं। ध्रुवपद बहुधा चौताल, धमार, तेवड़ा, शूल, गजझंपा, ब्रह्मताल, रुद्रताल, आड़ा चौताल इत्यादि में गाये जाते हैं, ध्रुपद की गायकी में तानों का प्रयोग वर्जित है, पर इसमें दुगुन, चौगुन, गमक और बोलतानों का प्रयोग किया जाता है। इसके गानेवाले "कलावंत" उपाधि से विभूषित होते हैं।

ध्रुवपद की प्रणाली सब से प्राचीन मानी जाती हैं। इस प्रणाली के गायक लोग जिस राग को जिस स्वर में गाना चाहते हैं, उसी स्वर में पहिले रागालाप करते हैं, फिर उस राग की सरगमों को और तब उस राग के पदों को गाना आरम्भ

करते हैं, तत्पश्चात् उसमें हर प्रकार का कौशल दिखाया जाता है, जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन, गमक, बोलतान इत्यादि।

ध्रुपद का गाना श्वास के आधीन है, जिस गायक की जितनी दृढ़ और दीर्घ सांस होगी वही ध्रुपद को उत्तम रीति से गा सकेगा, अन्यथा इस राग को अनुचित रीति से गाने में कलेजा फट जाने का अंदेशा रहता है, जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से मालूम होता है। अत इसका अभ्यास करने से पूर्व ब्रह्मचर्य की बहुत आवश्यकता है। सत्य बात तो यह है कि ब्रह्मचर्य के बिना गाना-बजाना परिपूर्ण हो ही नहीं सकता। जिसका कण्ठ कांपता हो और हृदय कमजोर हो उसके लिये ध्रुपद का गाना सर्वथा निषिद्ध ही है। ध्रुपद के आचार्य श्री स्वामी हरिदास बाबा, मियां तानसेन, बैजू बावर, गोपालनायक प्रभृति माने गये हैं जिनके विषय में यह धारणा है कि वे अपने गायन के द्वारा बड़ी-बड़ी अनहोनी बातें कर दिखाते थे। जैसे मेह का बरसना, बड़े से बड़े भयानक पशुओं को अपने वश में कर लेना, दीपक जला देना, भयंकर से भयंकर रोगों को शान्त कर देना, दूसरों के मन की भावनाओं का जानलेना, जङ्गल के पशु पक्षियों को अपने राग-तानों के द्वारा मुग्ध कर देना, इत्यादि-इत्यादि।

—— ॐ ——

हृ र्त
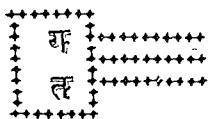
सरगम खमाच

(तीन ताल)

(स्वरकार—पं० नरायणदत्त जी जोशी ए०टी०सी०)

×				२				०				३			
												म	–	ध	–
सं	–	–	न॒	ध	प	–	म	ग	–	–	–	म	ध	–	न॒
ग	–	–	म	ग	र	स	–	स	ग	–	म	ग	र	स	–
स	स	ग	म	प	ध	न	सं	र	रं	स	न॒	ध	प	ग	म

अन्तरा

												म	–	ध	–
ग	म	ध	न	सं	–	–	–	र	रं	ध	–	न॒	न॒	प	–
ध	ध	ग	–	प	प	ग	–	म	म	र	–	ग	ग	स	–
स	स	ग	म	प	ध	न	सं	र	र	सं	न॒	ध	प	ग	म
सं	–	–	न॒	ध	प	–	म	ग	–	–	–	म	–	ध	–

धमार (मात्रा १४)

प्रेषकः— { श्रीयुत परिडतवर श्री रामदेव पान्डेय मृदङ्गाचार्य
Professor of Music in the University of Allahabad. }

विघ्न हरन प्रिय प्राण सम, सुरपुर सुखद प्रधान । मृदुभाषी साजन पती, जय मृदङ्ग गुण खान ॥

रेला (१)

+					२					३			
धागे	तेटे	कत्ता	कातिर	किटतक	तागे	तेटे	कत्ता	कातिर	किटतक	तिरकिट	तकता	गदिगन	धा
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
कड़ान	धा	किड़तग	दिंगड़	धा	कड़ान	धा	किड़तग	दिंगड़	धा	कड़ान	धा	किड़तग	दिंगड़
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४

रेला (२)

+					२					३			
घेके	टेता	कते	टेता	गेने	नाते	टेता	घेके	टेधा	दिन्ता	किड़िधा	दिन्ता	कते	टेता
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
किड़िधा	दिन्ता	कऽत	धाति	धा	किड़िधा	दिन्ता	कऽत	धाति	धा	किड़िधा	दिन्ता	कऽत	धाति
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४

(दिल्ली तथा लाहौर रेडियो स्टेशनों से ब्रोडकास्ट किये हुए कुछ गीत)

१—क्यू० एस० जहूर ने गाया

बसाले अपने मन में प्रीत ।

मन मन्दिर में प्रीत बसाले, ओ मूरख ओ भोले भाले !!
दिल की दुनिया करले रोशन ! अपने घर में जोत जगाले ॥
प्रीति है तेरी रीति पुरानी, भूल गया ओ भारत वाले॥
प्रीत है तेरी रीत ॥ बसाले अपने मन में प्रीत ॥

भारत माता है दुखियारी, दुखियारे हैं सब नर-नारी ।
तू ही बजादे मोहन मुरली, तू ही बनजा श्याम मुरारी ॥
तू जागे तो दुनिया जागे, जाग उठे सब प्रेम पुजारी ।
गायें तेरे गीत —— बसाले अपने मन मे प्रीत ॥

२—झूला गीत (लाहौर से गाया)

झूला झूलन की आई बहार सखिया, बहार सखिया ओ बहार सखिया
गलबैया डारे प्यारी के, झूलत नन्द कुमार सखिया ॥ झूल० ॥
खिले हैं फूल ये फुलवारियों में खूब सखी । गुलाब, गेंदा, जुही और गुलबहार सखी ॥
बरस-बरस के घटा छारही चहुँओर सखी । गरज-गरज घन चहुं दिशि छाये —
रिमझिम पड़त फुहार सखिया ॥ झूला० ॥

३—मौ० इशरत ने लाहौर से गाया

ये महफिल मे किसने मधुर गीत गाया । सम्हालो-सम्हालो मुझे वहश आया ॥
मुझे देके दावत, उन्हें भी बुलाया । इलाही चमन पर घटाओं का साया ।
न मैं हूं, न वो हैं, न थीन और दुनिया । जुनूने मुहब्बत कहा खींच लाया ।

(देहाती प्रोग्राम में पं० रतनप्रिया ने गाया)

तू कृष्ण शरण नहिं आया रे मन माया में लिपटाया ।
ये यौवन, ये रूप जवानी, इक दिन माटी में मिलजानी,
काल पीठ पर आया रे मन,—माया में लिपटाया ।
धन दौलत, और माल खजाने,जो मूरख तू अपने जाने,
चलती फिरती छाया रे, मन माया में लिपटाया ॥

पांच प्रश्नों का उत्तर !

(प्रेषक—पं० जयरामदास जी "जीवन" न्यू दिल्ली)

नवम्बर १६३८ के सङ्गीत में पृष्ठ ५७६ पर लाल चूरामन शाहजू देव ताल्लुकेदार ने सङ्गीत विषयक ५ प्रश्न प्रकाशित कराये थे। उन्हीं पांचों प्रश्नों के उत्तर हमारे पास पं० जयरामदास जी ने भेजे हैं, जिन्हें हम ज्यों के त्यों इस विशेषाङ्क में प्रकाशित कर रहे हैं। इन उत्तरों में जिन जिज्ञासुओं को कुछ शङ्का हो वे पत्र द्वारा परिडत जी से पूछ सकते हैं।

१-श्रुति और स्वर

प्रश्न (१)—सात स्वर से कम या अधिक स्वर क्यों नहीं माने ? मुख्य सात ही स्वर क्यों माने हैं ? इसी प्रकार केवल २२ श्रुतियां ही किस आधार पर मानी हैं ? कम या अधिक क्यों नहीं मानी ?

उत्तर—स्वर की श्रुतियों से, तथा श्रुतियों की नाद से और नाद की उत्पत्ति नाद ब्रह्म ॐ कार से है—ऐसा प्राचीन सङ्गीत ग्रन्थ निर्माणकर्ता ऋषियों का कथन है।

कहा है कि अखरड जो नाद सम्पूर्ण जगत में व्याप्त होकर, अनुरणात्मक ध्वनि प्रकाशित करता है, उस ध्वनि (नाद) को श्रुत जो श्रवणेन्द्रिय "कान" हैं वह सुनते हैं, इसलिये "श्रुति" कहते हैं। यथा—

श्रवणेन्द्रिय ग्राह्यत्वाद्, ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत्।
(विश्वावसु)

श्रवणार्थ स्यधातोः क्ति प्रत्ययेच सुसंश्रते ।
श्रुति शब्दः प्रसाध्योऽयं, शब्दज्ञैः कर्म साधनेः ॥
(मतङ्ग)

सङ्गीत के व्यवहार में ऐसी श्रुति केवल २२ ही मानी हैं, कारण—

ऊर्ध्वस्थित् त्रिनाडीषू, नाड्यस्तिर्यग हृदिस्थिताः।
द्वाविंशिति मिताश्चेति, प्राचीनां मुनियो ब्रुवून ॥
(सङ्गीत पारिजात)

३ ऊर्ध्व नाड़ियों में लगी हुई २२ तिरछी हृदय में स्थित हैं। उन छोटी २ नलिका रूप नाड़ियों को स्पर्श करके वह नाद श्रवण में स्थित होता है। तब श्रुति संज्ञा कही है। इससे साबित होता है कि मानव शरीर में केवल २२ श्रुतियों का ही ज्ञान रखने की शक्ति है।

अनन्त्यंहि श्रुतिनांचः, सुचियति विपश्चिता।
यथा ध्वनि विशेषेण, ममानं गगनोदरे॥
उत्ताल पवनोद्वेल्लज्जल राशि समुद्भवः।
इयत्य प्रति पद्यन्ते, न तरङ्ग परम्पराः॥

श्रुति अनन्त हैं। जैसे—आकाश मे धूल उड़ती हुई नजर तो आती है, परन्तु संख्या में नहीं गिनी जाती। इसी प्रकार जल में, पवन के लगने से असख्य तरंगें दीख पड़ती हैं, किन्तु उनकी गणना नहीं हो सकती। उसी प्रकार श्रुतियां भी सूक्ष्म से सूक्ष्म श्रवणगोचर तो होती हैं, परन्तु उन्हें गिनने की शक्ति हममें नहीं। (इति श्रुति भेद)

स्वर भेद

आर्थिकं गाथिकं चैव, सामिकं च सुरान्तरम्।
उदातश्चानुदातश्च, तृतीय स्वरितः स्वराः॥
उदात्ते निपाद गांधारो, वनुदात्ता ऋषभ धैवता।
स्वरितः प्रभवाह्येते पडज मध्यम पञ्चमः॥
चतुश्चतुश्चतु श्चैव पडज मध्यम पञ्चमाः।
द्वेद्वे निपाद गांधारो त्रिस्त्री ऋषभ धैवता॥

(सङ्गीत रत्नाकर)

यद्यपि स्वरों का मूल "ॐ" कार ही है तथापि वह (ऊर्ध्व), (मध), (अध) स्थान के उपाधि से "उदात्त" "अनुदात्त" और "स्वरित" भेदों को प्राप्त होते हैं। यथा—

जो स्वर (ऊर्ध्व) स्थान से प्रकट होता है, सो "उदात्त" कहलाता है।

इसमें 'निपाद' और 'गान्धार' ऐसे दो स्वर युक्त हैं—यह दो-दो श्रुतियों से व्यक्त होते हैं। जो स्वर (मध्य) स्थान से प्रगटित होता है वह "अनुदात्त" होकर 'ऋषभ' और धैवत दो स्वरों से युक्त हो, क्रम से तीन-तीन श्रुतियों से व्यक्त होते हैं और जो (अध) स्थान से प्रकट है वह "स्वरित" यह (पड़ज-मध्यम-पञ्चम) तीन स्वर युक्त होकर चार-चार श्रुतियों से व्यक्त होते हैं।

इसी प्रकार उदात्तादि भेद से २२ श्रुतियों पर सप्त स्वर स्थित होकर मन्द्र, मध्य, तार ऐसी तीन गतियों को प्राप्त होते हैं। यथा—हृदय में मन्द्र, कण्ठ में मध्य, मूर्ध्न में तार। ये प्रत्येक एक से दूसरा द्विगुण स्थान पर होता है।

(श्रुति स्वर चक्र)

प्राचीन स्वर	नं०	श्रुति	प्रचलित स्वर
०	१	तीव्रा	सा
०	२	कुमद्वति	०
०	३	मन्दा	०
सा	४	छन्दोवति	०
०	५	दयावती	रे
०	६	रञ्जनी	०
रे	७	रक्तिका	०
०	८	रौद्री	गा
गा	९	क्रोधा	०
०	१०	वज्रिका	मा
०	११	प्रसारिणी	०
०	१२	प्रीति	०
मा	१३	मार्जनी	०
०	१४	क्षिति	पा
०	१५	रक्ता	०
०	१६	आलापिनी	०
पा	१७	सन्दीपनी	०
०	१८	मदन्ति	धा
०	१९	रोहिणी	०
धा	२०	रम्या	०
०	२१	उग्रा	नी
नी	२२	क्षोभिणी	०

२–ग्राम भेद

(३) (?)

प्रश्न(५)–तीन ग्राम से क्या लाभ है ? अर्थात् "तीन ग्राम क्यों माने जाते हैं !

(२)

यदि तीन ग्राम नहीं होते तो क्या हानि थी ?

उत्तर—(१) मुख्य सात स्वर ही हैं। यदि सप्त स्वरों से कम या अधिक होते तो ग्रामों का भी कमाधिक्य होना सम्भव था—अत सप्त स्वरों से केवल (षड्ज) (मध्यम) और (गंधार) ऐसे तीन ही ग्राम होते हैं।

(२) यदि तीन ग्रामों की सृष्टि न होती, तो सात ही स्वर रह जाते, उप स्वरों (विकृत स्वरों) के प्रकट होने का और कोई साधन था—विना उपस्वरों के राग का क्रम चलना कठिन ही नहीं असम्भव था—इस हेतु ग्रामों की योजना की गई।

(ग्राम-प्रस्तार)

जब सप्त स्वर स्थान भेद से–मन्द्र–मध्य–तार–ऐसी तीन गतियों को प्राप्त होते हैं–तब उनके नाम क्रमानुसार—

मन्द्रस्थान	मध्य स्थान	तार स्थान
स़ ऱ ग म प ध़ ऩ	स र ग म प ध न	सं र गं मं प ध न

इस प्रकार हो जाते हैं।

ऐसे सप्त स्वरों के समूह को "स्थान" कहते हैं, स्थान का ही उपनाम सप्तक होता है। ऐसी सप्तक सङ्गीत व्यवहार में प्राय तीन ही आती हैं। ध्यान रहे कि शुद्ध सप्त स्वर ही प्रथम "षड्ज ग्राम" है। इसी से "मध्यम" तथा "गधार" ग्राम की रचना होती है। यथा —

यदि हम "षड्ज ग्राम" के (मध्यम) स्वर को षड्ज मानकर स्वरा–रोहण करें, तो वहही सप्त-स्वर "मध्यम ग्राम" होकर एक "विकृत-स्वर" अथवा "तीव्र मध्यम" की विशेषता करेगा।

इसी क्रम से जब, 'मध्यम ग्राम' के निषाद स्वर को (जो यथार्थ में 'षड्ज–ग्राम' का गंधार है) षड्ज मानकर आरोहण किया जाय, तो 'गधार ग्राम' हो कर ४ विकृत स्वर–र॒, ग॒, ध॒, न॒, कोमल स्वरों की वृद्धि करता है।

उपरोक्त ग्राम प्रस्तार से ५ विकृत स्वर–"षड्ज ग्राम" से ७ शुद्ध स्वर। ऐसे शुद्ध विकृत मिल कर एक 'सप्तक' में १२ स्वर हो जाते हैं।

(३) अब ग्राम प्रति ग्राम मिलकर जो रूप धारण करते हैं, उसका नाम 'मेल' है-इस मेल का शास्त्रोक्त नाम 'मूर्छना' है। "मूर्छना" को ही वर्तमान समय में 'ठाट' कहते हैं।

[ग्राम मेल क्रिया—अर्थात्—ठाट व्याख्या]

प्रथम "षड्ज ग्राम" के ४ अंग निम्न प्रकार किये—

प्रथम अङ्ग		दूसरा अङ्ग		तीसरा अङ्ग		चौथा अङ्ग	
स	रे	ग	म	प	ध	न	०

उपरोक्त चार अङ्ग शुद्ध स्वरों से युक्त होने के कारण 'षड्ज ग्राम' है। येही अङ्ग विकृताङ्गों से युक्त हो जाने पर ग्राम मेल कहलायेंगे। जो अंग मध्यम विकृताङ्गों युक्त होगा—वह 'मध्यम ग्राम' मेल होगा। जो अंग रे, ग, ध, नी, युक्त विकृताङ्ग होंगे वह 'गंधार ग्राम' मेल समझे जायेंगे। (यहां एक ठाट का उदाहरण देकर ग्राम भेद दर्शाना अनुचित न होगा) जैसे एक 'ठाट' का नाम— कर[४] हर[१] प्रिया[२] मेल[३]—है,

इस पद का अर्थ 'क्रम' मिलाने से—हर[१] प्रिया[२] मेल[३] कर[४]—ऐसा होता है। (भावार्थ)

'हर'[१] कहिये "महादेव" उनकी 'प्रिया'[२] कौन "पार्वती" अर्थात् (गौरी) अतः "गौरी" मेल[३] कर[४]—किससे? "शंकरा भरण" से! कारण कि (शङ्करा भरण—षड्ज ग्राम) है और (गौरी मेल—गंधार ग्राम) है—यथाः—

गौरी मेल समुद्धृत्वा, गान्धारादिक मूर्छनां।

("सङ्गीत पारिजात")

इस रीति से जब 'षड्ज ग्राम' से 'गांधार ग्राम का मेल होता है-तब उसको [हर प्रिया मेल] कहते हैं। और मेल करने के अर्थ से कहा जाता है—कर हर प्रिया मेल। इसी का प्रचलित नाम काफी ठाट है।

सूर्य सम्वत सर मकर संक्रांति से मानते हैं। अत, जिस ऋतु में मकर युत हो राशियों को सूर्य भोगता है वोही ऋतु प्रथम मानते हैं। इस हेतु शिशिर ऋतु मे मकर संक्रांति होने से-प्रथम ऋतु-शिशिरे-इत्यादि'—

नियमित समय हीन–गायन से हानि

एक से अधिक रस प्रकट करने के लिये जो स्वरों की रचना की जाती है, उसे राग कहते हैं। कारण कि श्रुति (स्वर) रस युक्त है। इनमें नव रस किस प्रकार विद्यमान हैं, "रस जाति" से बोध होता है। अत स्थाना भाव से इस प्रसग का विस्तार पूर्वक वर्णन न करके केवल यही कहना उचित होगा कि उपरोक्त 'रसात्मक' रागों ऋतुओं की अनुकूलता देख कर ही नियमित किये हैं।

रसादि भेद के अनुकूल तथा प्रतिकूल ऐसे दो प्रकार माने हैं। उनमें परस्पर विरुद्ध रस कोही प्रतिकूल कहा है। इस क्रिया द्वारा, "सङ्गीत पारिजात" में ऐसा लिखा है —

अकाल राग गाने न, जाति दोषम् हरत्ययम्।

"अकाल राग" अर्थात् समय विपरीत राग गायन में जाति (रस) में दोष (विरुद्धता) प्राप्त होने से, रस की हीनता हो जाती है। अत 'रस हीन राग' रुचि कर नहीं प्रतीत होता।

राग ऋतु परिवर्तन निर्णय

राग ऋतु चक्र से विदित होगा कि (भैरव राग) शरद ऋतु पर नियमित है। और शरद काल अर्थात् "शरद ऋतु का समय" रात्रि के प्रथम प्रहर मे होने से वर्तमान कल्याण राग के समय पर उक्त 'भैरव' आता है, जो प्रचलित नियम से विरुद्ध है। परन्तु राग ऋतु की समानता पर विचार करने से तो प्रचलित नियम ही ठीक होता है। जैसे ऋतुओं मे-प्रथम शिशिर को मानते हैं, उसी प्रकार रागो में प्रथम 'भैरव' राग की गणना होती है। तब यहा 'भैरव' को शेष रात्रि अर्थात्-शिशिर ऋतु काल में गाने से राग ऋतु काल की समकालीनता प्राप्त होजाती है। (इति ऋतुभेद)

राग–ऋतु–कोष्टक ।

	१	२	३	४	५	६
षट ऋतु	शिशिर ऋतु	बसन्त ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु	शरदऋतु	हेमन्त ऋतु
संक्रांति	धन–मकर	कुम्भ–मीन	मेष–वृष	मिथुन–कर्क	सिंह–कन्या	तुला–वृश्चिक
मास	पौष–माघ	फाल्गुण–चैत्र	बैसाख–ज्येष्ठ	आषाढ़–श्रावण	भाद्रपद–आश्विन	कार्तिक मार्गशीर्ष
दिन रात्री	शेष रात्रि	प्रातःकाल	मध्यान्हकाल	सायङ्काल	प्रथमरात्रि	अर्ध रात्रि
समय विभाग	रात्रि १० घड़ी	दिन १० घड़ी	दिन १० घड़ी	दिन १० घड़ी	रात्रि १० घड़ी	रात्रि १० घड़ी
राग नाम	भैरव १	हिण्डोल २	दीपक ३	मेघ ४	श्री ५	मालकोष
दिशा	उत्तर मुख से	पूर्व मुख से	दक्षिण मुख	ऊर्ध्व मुख	पश्चिम मुख	गिरजा मुख से
शङ्कर मुख	ईशान ,,	वामदेव ,,	अघोर ,,	सद्योजात ,,	तत्पुरुष ,,	,, ,, ,,
रोग उपचार	संक्राम ज्वर का दूर होना	शिर पीड़ा तथा मूर्छना दूर होना	रस परिवर्तन	क्षयरोग निवारक	मानसिक विकार दूर होना	मूर्छागत वायु दमन
राग गुण	स्वतः कोल्हू चले	हिण्डोला झूले	अग्नी प्रदीप करे	जल वृष्टी	सूखा वृक्ष हरा होना	पत्थर पिघल जाय
ब्रह्ममत	मेघ ५	बसन्त २	भैरव ४	श्रीराग १	पञ्चम ३	नटनारायण ६
शिवमत	श्रीराग १	बसन्त २	भैरव ४	मेघ ५	पञ्चम ३	नट नारायण ६
कृष्णमत	,,	,,	,,	,,	,,	,,
भरतमत	मालकोष २	हिण्डोल ३	दीपक ४	मेघ ६	भैरव १	श्रीराग ५
हनुमतमत						

९–एक ताल–निर्णय

प्रश्न (४)–इक ताला में तो चौताले के अनुसार ही ताल लगाना प्रचलित है। फिर इसका नाम एक ताला क्यों है?

उत्तर–प्रथम यह बता देना उचित होगा कि "एक ताल का" लक्षण तथा रूप क्या है? (सङ्गीत रत्नाकर) ने एक ताल को "आदि ताल" „लघ्वादि तालो लोकेऽस्मो रासः" के आधार पर एक (।) लघु को ही "एक ताल" माना है और "जाती" सप्त ताल में भी एक ताल (।) इसी प्रकार है।

प्रचलित 'एक ताल' को ३ लघु युक्त करके (।।।) ऐसा रूप मानते हैं, परन्तु इसे ३ अङ्क का रूप (पिण्ड) बन जाने से तीन ताल देने का नियम हो जाता है। सो केवल भ्रम है। विचार शक्ति से ज्ञात होता है कि एक लघु ताल की आवृति अति सूक्ष्म होने से गायन मे रोचकता प्राप्त न देख किसी ने "३ ताला–वृति" एकत्रित कर उसमें गायन का एक 'पद' (भाग) निर्माण किया हो।

ऐसी दशा मे धीरे-धीरे तीन तालावृति का प्रयोजन न समझ किसी ने ३ आवृति को ही १ आवृति मान कर एक ताल समझा हो तो क्या आश्चर्य है।

इसके अलावा "एक ताला" के विषय में और कुछ कारण मालूम नही पड़ता।

'एक ताल' में जो 'चार ताल' के समान ताल देने की क्रिया है, वह केवल लय की अल्पता का कारण है। एक ताल में बराबर–बराबर आने से, समाघात (सम) जानने में कठिनाई देख, एक ताल के तीसरे 'अङ्क' के दो भाग (।।००) ऐसे करके सम ताल के समझने की सुगमता किसी ने भी की हो, परन्तु क्रम से यह प्रथा ही बन गई कि एक ताल में चार ताल देना।

"एक ताल अङ्क +।।। मात्रा १२

"चार ताल" अङ्क +।।०० मात्रा १२

ऊधौ बनि आये की बात!

(सूर पद)

ऊधौ बनि आये की बात!
हाथ लकुटिया काँधे कमरिया, रज लपटाये गात॥
जो गंगा देवन को दुर्लभ तामें श्नान नहात॥ ऊधौ०॥
माग-माग प्रभु हमसे खाते, दधि माखन और भात॥ऊधौ०॥
हम न सुनी हरि धोती पहिरत चढ़े खड़ाऊं जात॥
सूरदास गति कहलों बरनों दो जननी दो तात॥ ऊधौ०॥

(चार ताल) ध्रुपद यमन (मात्रा १२)

(स्वरलिपिकार—श्री० मदनलाल जी वायोलिन मास्टर, सीकर)

स्थायी—स्वामी कृपा निधान, जग में है तेरो ध्यान ।
तू ही पालन हारा, तू ही देवन हारा, जीवन तेरो दान ॥
अन्तरा—गिरधारी तोरी महिमा है सारी अनगिन कृपा तिहारी ।
पात-पात, डारी-डारी तू ही है शक्तिवान ॥

आरोह—स र ग मं प ध न सं । अवरोह—सं न ध प मं ग र स ।

आलाप—ग, रस, नरग, रग, नरंगंरंगं, नरंगंमंरंगं, रंगं, रंसं, नरंसं ।

चौताला मात्रा १२, भाग ६, ताली ४, खाली २

ठेका—धा धा, दिं ता, किट धा, दिं ता, तिट कत, गदि गन ।

मात्रा—१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

स्थायी—ठाय

+		०		+		०		+		+	
सं	–	स	–	न	ध	न	ध	प	पमं	गर	र
स्वा	ऽ	मी	ऽ	कृ	ऽ	पा	ऽ	नि	धाऽ	ऽऽ	न
ग	मं	प	ध	र	ग	र	ग	र	स	–	स
ज	ग	में	ऽ	है	ऽ	ते	ऽ	रो	ध्या	ऽ	न
ऩ	र	ग	मंमं	गर	ग	ऩ	र	ग	मंमं	गर	ग
तू	ही	पा	लन	हाऽ	रा	तू	ही	दे	वन	हाऽ	रा

न	ध	नसं	नध	पम	प	ग	र	ऩ	स	–	स
जी	ऽ	वऽ	ऽऽ	नऽ	ऽ	ते	ऽ	रो	दा	ऽ	न

अन्तरा–ठाय

+		०		+		०		+		+	
ग	ग	ग	म	ध	न	स	स	सं	सं	–	सं
गिर	धा	री	तो	ऽ	री	मही	मा	हि	सा	ऽ	री
सं	र	गं	र	सं	न	ध	प	प	पम	पम	प
अ	न	गि	न	कृ	ऽ	पा	ऽ	ति	हाऽ	ऽऽ	री
ग	–	रं	स	न	ध	प	म	ध	प	ग	र
पा	ऽ	त	पा	ऽ	त	डा	ऽ	री	डा	ऽ	री
ग	म	प	ध	र	ग	र	ग	र	स	–	स
तू	ऽ	ही	ऽ	है	ऽ	श	ऽ	कि	वा	ऽ	न

स्थाई–दुगुन–समसे

स–	स–	नध	नध	पपम	गरर	गम	पध	रग	रग	रस	–स
स्वाऽ	मीऽ	फिर	पाऽ	निवाऽ	ऽऽन	जग	मेंऽ	हैऽ	तेऽ	रोध्या	ऽन
ऩर	गमम	गरग	ऩर	गमम	गरग	नध	नसनध	पमप	गर	ऩस	–स
तूही	पालन	हाऽरा	तूही	देवन	हाऽरा	जीऽ	वऽऽऽ	नऽऽ	तेऽ	रोदा	ऽन

स्थाई—चौगुन—समसे

×		०		२	
सं–सं–	नधनध	पपमगरर	गमपध	रगरग	रस–स
स्वाऽमी	करपाऽ	निधाऽऽऽन	जगमेंऽ	हैऽतेऽ	रोध्याऽन

०		३		४	
नरगमम	गरगनर	गममगरग	नधनसंनसं	पमपगर	नस–स
तूहीपालन	हाऽरतूही	देवनहाऽरा	जीऽवऽऽऽ	नऽऽतेऽ	रोदाऽन

ठाय—दुगुन, चौगुन, तीया, खालीसे

०		३		४		×		०		२	
सं	–	सं	–	न	ध	न	ध	प	पम	गर	र
स्वा	ऽ	मि	ऽ	क	र	पा	ऽ	नि	धाऽ	ऽऽ	न

०		३		४		×		०	
गम	पध	रग	रग	रस	–स	नरगमम	गरगनर	गममगरग	नधनसंनसं
जग	मेंऽ	हैऽ	तेऽ	रोध्या	ऽन	तूहीपालन	हाऽरातूही	देवनहाऽरा	जीऽवऽऽऽ

२		०		३	
पमपगर	नस–स	नधनसंनसं	पमपगर	नस–सन	धनसंनसं
नऽऽतेऽ	रोदाऽन	जीऽवऽऽऽ	नऽऽतेऽ	रोदाऽनजी	ऽवऽऽऽ

४	
पमपगर	नस–स
नऽऽतेऽ	रोदाऽन

अन्तरा–दुगुन सम से

+		०		२		०		३		४	
गग	गम	धन	रूसं	संमं	–सं	सरं	गरं	मन	धप	पपम	पमप
गिरधा	रीतो	ऽरी	महिमा	हैमा	ऽरी	अन	गिन	कर्	पाऽ	तिहाऽ	ऽऽरी
गं–	रंसं	नध	पम	धप	गर	गम	पध	रग	रग	रंस	–म
पाऽ	तपा	ऽत	डाऽ	रीडा	ऽरी	तूऽ	हीऽ	हैऽ	शऽ	स्त्रिया	ऽन

अन्तरा–चौगुन

+		०		२	
गगगम	धनसंसं	समं–सं	सरंगरं	संनधप	पपमपमप
गिरधारीतोऽ	रीमहिमा	हैसाऽरी	अनगिन	करपाऽ	तिहाऽऽऽरी
०		३		४	
ग–रसं	नधपम	धपगर	गमपध	रगरग	रस–स
पाऽतपा	ऽतडाऽ	रीडाऽरी	तूऽहीऽ	हैऽशऽ	क्रियाऽन

अन्तरा–ठाय, दुगुन, चौगुन–तीया

ग	ग	ग	म	ध	न	स	स	सं	सं	–	सं
गिर	धा	री	तो	ऽ	री	महि	मा	है	सा	ऽ	री
सर	गर	सन	धप	पपम	पमप	गं–रस	नधपम	धपगर	गमपध	रगरग	रस–स
अन	गिन	कर	पाऽ	तिहाऽ	ऽऽरी	पाऽतपा	ऽतडाऽ	रीडाऽरी	तूऽहीऽ	हैऽशऽ	क्रियान

गमपध	रगरग	रस-स	गमपध	रगरग	रस-स
तूऽहीऽ	हैऽशऽ	क्रियाऽन	तूऽहीऽ	हैऽशऽ	क्रियाऽन

तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफ़िर.........!

राग माढ़	न्यू थियेटर्स कृत "भाग्यचक्र" में के० सी० दे० ने गाया	ताल कहरवा

तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफ़िर जाग ज़रा।
आज ज़रा सा फ़ितना है ये, तू कहता है कितना है ये।
दो दिन में यह बढ़ कर होगा, मुंह फट और मुंह जोर ॥ मुसाफ़िर० ॥
नींद में माल गवां बैठेगा, अपना आप लुटा बैठेगा।
फिर पीछे कुछ नहीं बनेगा, लाख मचावे शोर ॥ मुसाफ़िर० ॥
तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफ़िर जाग ज़रा ॥

।				+				।				+			
*	ऽ	ते	री	ग	ठ	री	में	ला	ऽ	गा	ऽ	चोऽ	ऽ	र	मु
*	–	स	स	स	ध	ध	ध	ध	–	ध	प	पध	न	–	ध
सा	ऽ	फि	र	जा	ऽ	ग	ज़	रा	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ग	ज़
ध	प	प	–	ग	म	ग	र	स	–	–	–	ध़	स	स	स
रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	आ	ऽज	ज	रा	ऽ	सा	ऽ	फि	त	ना	ऽ
स	–	–	–	–	स	प	प	प	–	प	–	प	ध	ध	न
है	ऽ	य	ह	ऽ	तू	ऽ	कह	ता	ऽ	है	ऽ	कि	त	ना	ऽ
ध	प	प	–	–	ग	–	ग	ग	र	र	स	स	र	र	ग
है	ऽ	य	ह	ऽ	दो	दि	न	में	ऽ	य	ह	ब	ढ़	क	र
र	स	स	–	–	सं	सं	सं	सं	–	सं	–	ध	न	न	सं

हो	ऽ	गा	ऽ	ऽ	मुह्	फ	ट	औ	ऽर	मुं	ह	जो	ऽ	ऽ	र
न	ध	ध	प	–	न	न	न	न	ध	ध	प	प	ध	–	–
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	दो	दि	न
–	–	प	ग	प	–	–	–	–	–	–	–	ध	सं	सं	सं
में	ऽ	य	ह	ब	ढ	क	र	हो	ऽ	गा	ऽ	ऽ	मुह	फ	ट
सं	–	सं	–	स	रं	रं	गं	रं	सं	सं	–	–	न	न	न
ओ	ऽर	मुं	ह	जो	ऽ	र	मु	सा	ऽ	फि	र	जा	ऽ	ग	ज
न	ध	ध	प	प	ध	–	प	ग	र	स	र	ग	म	ग	र
रा	ऽ	ते	री	ग	ठ	री	में	ला	ऽ	गा	ऽ	चोऽ	ऽ	ऽर	मु
स	–	स	स	स	ध	ध	ध	ध	–	ध	प	पध	न	–	ध
सा	ऽ	फि	र	जा	ऽ	ग	ज	रा	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ग	ज
ध	प	प	–	ग	म	ग	र	स	–	–	–	ध़	स	स	स
रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नीं	द	में	मा	ऽ	ल	गं	वा	ऽ	वै	ऽ
स	–	–	–	–	प	प	प	प	–	ध	प	ध	स	सं	–
ठे	ऽ	गा	ऽ	ऽ	अप	ना	ऽ	आ	ऽ	प	नु	टा	ऽ	वै	ऽ
स	–	स	–	–	ध	ध	–	स	–	रं	रं	र	सं	र	ग

ठे	ऽ	गा	ऽ	ऽ	फि	र	पी	छे	ऽ	कु	छ	ऽ	न	हीं	ब
रं	सं	सं	–	–	सं	सं	सं	सं	–	सं	सं	–	न	न	सं
ने	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ला	ऽख	म	चा	ऽ	वे	ऽ	शो	ऽ	ऽर	मु
न	ध	ध	–	प	न	–	न	न	ध	ध	प	प	ध	–	प
सा	ऽ	फि	र	जा	ऽ	ग	ज	रा	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ग	ज
ग	र	स	र	ग	म	ग	र	स	–	–	–	ध़	स	स	स
रा	ऽ	ते	री	इसके बाद सबसे पहिली लाइन फिर बजाओ।											
स	–	स	स												

स्त्री क्या है ?

(लेखक— 'अल्फिलासफा')

नौसाल से कुछ पहले औरत जिसे कहते हैं,
दिलचस्प खिलौना है लअ्बत इसे कहते हैं।
दस साल से पन्द्रह तक एक हुस्न की देवी है,
फितरत का नमूना है दुलहन इसे कहते हैं।
पर बीस बरस तक वो अंबारे नज़ाकत है,
एक तोदाए लहमी हैं बेगम इसे कहते हैं।
फिर तीस बरस तक वो गहवारये गिरिया है,
बच्चों की वो अम्मी है आपा इसे कहते हैं।
चालीस की सरहद पर मोहतरमा है दादी वो,
या कहिये तो नानी है अम्मा इसे कहते हैं।
पच्चास पै जब पहुंची गर्दन जदनी है वो,
मरने को तरसती है बुढ़िया इसे कहते हैं।
जब साठ बरस की हो इक पीकरे नफरत है।
वो लानते हस्ती है मुर्दा इसे कहते हैं।

('इक़बाल उर्दू' से)

मानो-मानो जी छैल नन्दलाल !

होली काफी (३ ताल)

(स्वरकार—श्री० पं० नारायणदत्त जी जोशी ए० टी० सी०)

मृदु मध्यम गन्धार है, मृदु तीरवहु निपाद ।
काफी सुन्दर राग है, प स वादी सम्वाद ॥ (चन्द्रिका सार)
निसौ रिगौ मपौ धनी, सनिधपा मगौ रिसौ ।
काफी पूर्ण भवेन्नित्यं, पच माश समन्विता ॥

——*—— (अभिनव राग मञ्जरी)

यह राग सम्पूर्ण है, क्योंकि इसके आरोह-अवरोह में सातों स्वर लगते हैं। इसमें दोनों गन्धार, दोनों निषाद और कोमल मध्यम लगता है। इसका वादी स्वर पञ्चम और सवादी स्वर षड्ज है। गाने का समय रात का दूसरा प्रहर है। कोई २ आचार्य इसके वादी और संवादी स्वर गधार और निपाद भी मानते हैं। कोई २ इसमें कोमल धैवत का प्रयोग भी कर लेते हैं। यह राग बहुत लोकप्रिय है। यह प्रेम व उद्वेग (Love and passion) प्रकट करता है।

राग स्वरूप—नि़ सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां नि॒ ध प म ग॒ रे सा ।

⊛ गीत ⊛

मानो मानो जी छयल नन्दलाल,
मूरख मोरी अगिया भिगोई ।
कैसी पिचकारी मारी भीग गई सारी,
रंग डारो ना गुलाल ॥ मानो० ॥
अब घर कैसे जाऊँ सास लड़ेगी, देखत हैं ब्रजबाल ।
ललन फाग ब्रज धूम-धाम करि, नटवर करत कुचाल ।
वदन पर केसर डारी, ऐसी पिचकारी मारी,
कीन्हीं बाराजोरी, देखो मदन गोपाल ॥ मानो० ॥

——*——

स्थाई ।

०				३				+				२			
														नि़	सा
														मा	नो
सा	रे	रे	रे	ग	ग	म	म	प	–	–	–	पम	गरे	सा	नि़
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मा	नो
सा	रे	रे	रे	ग	ग	म	म	निप	–	–	पम	प	ध	नि	सां
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	ला	ऽ	ऽ	लमू	र	ख	मो	री
नि	ध	प	म	ग	–	रे	–	रे	नि	ध	ध	ध	नि	प	ध
अं	गि	या	भि	गो	ऽ	ई	ऽ	कै	सी	पि	ध	का	री	मा	री
नि	–नि	नि	नि	सां	सां	ग	रे	सा	ग	रे	म	ग	रेरे	सा	नि़
भी	ऽग	ग	ई	सा	री	रं	ग	डा	रो	ना	गु	ला	ऽल	मा	नो

अन्तरा ।

प	प	प	ध	म	प	नि	नि	सां	–	सां	रें	नि	–	सां	–
अ	व	ध	र	कै	से	जा	ऊँ	सा	ऽ	स	ल	ड़े	ऽ	गी	ऽ
नि	–	नि	नि	धप	ध	म	म	प	–	–	–	प	ध	नि	सां
दे	ऽ	ख	त	हैं	ऽ	वृ	ज	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ल
नि	–	नि	नि	ध	–	म	म	मप	ध	पध	नि	धनि	सां	निप	प
दे	ऽ	ख	त	है	ऽ	वृ	ज	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ल

नि	-	नि	नि	धप	ध	म	म	प	-	-	-	-	-	-	प
दे	ऽ	ख	त	हैं	ऽ	वृ	ज	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ल
म	म	म	प	नि	नि	नि	नि	सां	-	गं	रें	सा	नि	सा	सां
ल	ल	न	फा	ऽ	ग	वृ	ज	धू	ऽ	म	धा	ऽ	म	क	रि
नि	नि	नि	नि	धप	ध	पम	म	प	-	-	पप	प	ध	नि	सा
न	ट	व	र	क	र	त	कु	चा	ऽ	ऽ	लव	द	न	प	र
न	ध	प	म	ग	-	र	-	र	न	ध	ध	ध	धन	धप	ध
के	ऽ	स	र	डा	ऽ	री	ऽ	पे	सी	पि	च	का	री	मा	री
न	न	न	न	सं	सं	ग	र	स	रग	ग र	गम	ग	रर	स	न
की	न्हीं	व	र	जो	री	दे	खो	म	द	न	गो	पा	ल	मा	नो
स	र	र	र	ग	ग	म	म	प	-	-	प				
मा	नो	जी	छ	य	ल	न	द	ला	ऽ	ऽ	ल				

तान स्थाई

स	न
मा	नो

स	र	र	र	ग	ग	म	म	प	-	-	-	पम	गर	स	न
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽल	मा	नो

मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	ला	ऽ	पध	नध	पम	गर	मा	नो
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	पध	पम	गम	पध	नध	पम	गर	मा नो
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	गम	पध	नसं	रंसं	नध	पम	गर	मा नो
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	पध	नसं	रंसं	नध	पम	गर	मा	नो
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	पध	नसं	रंगं	रंसं	नध	पम	गर	मा नो
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	मप	धन	संरं	संन	धप	मग	रस	मा नो
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	धन	संरं	गंमं	गंरं	संन	धप	मग	रस
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	सर	गम	पध	नरं	नध	पम	गर	सन्
मा	नो	जी	छ	य	ल	नं	द	संरं	गंमं	पंमं	गंरं	संन	धप	मग	रस
मा	नो	जी	छ	सर	गम	पध	नसं	रंगं	मंपं	मंगं	रंसं	नध	पम	गर	सन्
सर	गम	रग	मप	गम	पध	मप	धन	पध	नसं	धन	संरं	संन	धप	मग	रस

तान अन्तरा

०				३				×				२			
प	प	प	ध	म	प	न	न	सं	–	सं	रं	न	–	सं	–
अ	व	घ	र	कै	से	जा	ऊं	सा	ऽ	स	ल	ङे	ऽ	गी	ऽ

अ व ध र	कै से जा ऊं	मप नसं रंगं रंसं	नध पम पन सं
अ व ध र	कै से जा ऊं	रंग रंस नध नसं	नध पम पन सं
अ व ध र	कै से जा ऊ	रंगं मंपं मंगं रंस	नध पम पन सं
अ व ध र	कै से जा ऊं	पंमं गंरं सन धप	मग मप धन सं
अ व ध र	कै से जा ऊं	सर गम पध नसं	रग रंसं नध नसं
अ व ध र	कै से जा ऊ	रगं रंसं नध पम	गर गम पध नसं
अ व ध र	मप नसं रंमं गंरं	रंन धप मग रस	रग मप धन सं
अ व ध र	रंग मंपं मग रंसं	नध पम गर सऩ	सर गम पध नसं
अ व ध र	मप मंग रंस नध	पम गर सऩ सर	गम पध नन सं
रंन ध- नध प-	धप म- पम ग-	मग र- गर स-	सर गम पध नसं
नसं रंरं संन धन	संसं नध पध नन	धप मप धध पम	गर गम पध नस
संरं सन धन धप	मप मग रग रस	नस रग मप धन	सर गमं गंरं नसं
मप नसं नध पम	गर सर गम पध	नसं रगं रस नध	पम गर सऩ स-
मंप नसं नध पम	गर सऩ सरं गम	पध नसं रंग रस	नध पम गर सस

संरं संन धन धप	मप मग रग रस	नृस रग मप धन	संरं गंमं गंरं सं–
संरं संनं धन धप	पध पम मप मग	गम गर रग रस	सर गम पध नसं
सर गर गम पम	रग मग मप धप	गम पम पध नध	मप धप धन संन
पध नध नसं रंसं	धन संन संरं गंरं	नसं रंसं रंगं रंसं	नध पम गर स–

हम साजन की सेवा करके मन की जोत जगाते हैं

शाद आरिफी रामपुरी

कुछ ऐसे हैं जो पौ फटते ही गङ्गा जी को जाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो सुबह सवेरे हरि के भजन सुनाते हैं।
कुछ ऐसे हैं जो तड़का होते मन्दिर से फिर आते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो अपने घर पर रोज भजन कराते हैं॥
हम साजन की सेवा करके मन की जोत जगाते हैं॥

कुछ ऐसे हैं जो धन दौलत के पीछे उम्र गंवाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो खुद दुखसहकर औरको सुख पहुँचाते हैं।
कुछ ऐसे हैं जो वेदों के मन्तर पर ध्यान लगाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो जोगी बन कर अङ्ग भबूत रमाते हैं॥
हम साजन की सेवा करके मन की जोत जगाते हैं॥

कुछ ऐसे हैं जो दुनियां के धन्दों में फंसते जाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो और को धोखा देते धोखा खाते हैं।
कुछ ऐसे हैं जो अपने रूप अनूप कलङ्क लगाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो बहका कर रस्ते से भटकाते हैं॥
हम साजन की सेवा करके मन की जोत जगाते हैं॥

कुछ ऐसे हैं जो बल बूते पर अपने ऐंठे जाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो अपनी अच्छी सूरत पर इतराते हैं।
कुछ ऐसे हैं जो पाप में फँसकर बनमानस कहलाते हैं,
कुछ ऐसे हैं जो नटखट बनकर जी को जङ्ग लगाते हैं।
हम साजन की सेवा करके मन की जोत जगाते हैं॥

कितना ही वो साजन रूठे ध्यान में कब हम लातेहैं,
कितना ही वो हाल न पूछे हम तो हाल सुनाते हैं।
हम सुपने में उसकी प्यारी सूरत देखे जाते हैं,
'छोड़ो भी यह प्रीत का झगड़ा' लोग हमें समझाते हैं॥
हम साजन की सेवा करके मन की जोत जगाते हैं॥

शब्दकार "कृष्णा"	(ताल झूल १० मात्रा)	स्वरकार— श्री० पं० चिरञ्जीवलाल 'जिज्ञासु'

स्थाई—अजर अजन्मा अगम अगोचर ।
सुख के दाता नाम तिहारो ॥
अन्तरा—जन प्रति पालन भक्त उधारन ।
जीव को मालिक तुमरो सहारो ॥

धा	धा	दीं	ता	तिटि	धा	तिटि	कत	गदि	गिन
स	सं	न	स	ध	न	ध	म	–	–
अ	ज	र	अ	ज	न	मा	ऽ	ऽ	ऽ
ग	म	ध	म	ग	म	ग	स	–	स
अ	ग	म	अ	ग	ऽ	ऽ	च	ऽ	र
न	स	ग	म	ध	न	सं	न	सं	–
सु	ख	के	ऽ	दा	ऽ	ऽ	ऽ	ता	ऽ
गं	–	सं	न	ध	न	सं	न	ध	म
ना	ऽ	म	ति	हा	ऽ	ऽ	ऽ	रो	ऽ

अन्तरा

ग	म	ध	न	स	–	–	सं	–	सं
ज	न	प्र	ति	पा	ऽ	ऽ	ल	ऽ	न

न	–	सं	गं	मं	गं	सं	न	ध	म
भ	ऽ	क्त	उ	धा	ऽ	ऽ	ऽ	र	न

मं	–	गं	सं	न	सं	न	ध	म	म
जी	ऽ	व	को	मा	ऽ	ऽ	लि	ऽ	क

ग	म	ध	न	सं	न	ध	न	ध	म
तु	म	रो	स	हा	ऽ	ऽ	ऽ	रो	ऽ

आलाप (१)

सस	ग	–	स	स	सग	म	–	ग	म
ध	नध	न	–	ध	म	ग	म	ग	स
गम	धन	सं	धन	संन	धन	धम	गम	गस	नुस
अ	ज	र	अ	ज	न	मा	ऽ	ऽ	ऽ

अलाप (२)

ग	म	ध	नध	सं	–	सं	गं	–	सं
सं सं	मंगं	मं	गं	सं	–	सं	न	ध	नध
न	–	ध	म	गग	स	मम	गम	गस	नुस

गंगं	ससं	मंमं	गंगं	संसं	नन	धध	मम	गग	सस
अ	ज	र	अ	ज	न	मा	ऽ	ऽ	ऽ

तानें

गग	सस	नुस	नुध	मध	नस	गम	धम	गम	गस
गम	धन	संन	धम	गम	गस	सगं	संन	धम	गस
अ	ज	र	अ	ज	न	मा	ऽ	ऽ	ऽ

गग	स	धम	नध	सन	धम	ग	संन	धन	धम
गस	मग	धम	नध	स	गम	धन	सन	धन	धम

बोल तान

सग	मध	नध	म	गम	धन	सन	धन	सं	सं
अज	रअ	जन	मा	अग	मअ	गोऽ	ऽऽ	च	र
गस	मग	धम	नध	सन	गंस	मग	संन	धम	गस
सुख	केऽ	दाऽ	ऽऽ	ताऽ	नाऽ	मति	हाऽ	ऽऽ	रोऽ

चढत

सग	सम	-म	गम	गध	-ध	मध	मन	-न	धन

धसं	–सं	गम	धन	संन	धन	धम	गम	गस	नस

उतार

धसं	–सं	मन	–न	गध	–ध	सग	–ग	गग	सस
मम	गग	धध	मम	नन	धध	रून	धम	गम	गस

फिरकत

सम	गम	धम	गम	धन	धम	गम	धन	संन	धन
धम	गम	धम	धन	संगं	संन	धन	धम	गम	गस

राग विवरण (मालकोष)

इस राग में ग, ध, न, कोमल शेष स्वर शुद्ध हैं। औडव जाति का मधुर राग है। (रे) (प) वर्जित हैं, गायन समय रात्री १२ बजे से ३ बजे तक (म) वादी (स) सम्वादी हैं।

आरोही—स ग म ध न सं

अवरोही–सं न ध म ग स

शब्दकार—
स्व० रायबहादुर
लक्ष्मीनारायणसिंह जी

रागमाला

(एक ताल विलम्बित मात्रा १२)

स्वरकार—
गायक-नायक
श्री० पं० रघुनन्दन झा

स्थाई—माता दुर्गा भवानी मालकोश पूरण करहु अरु चीर वसन्त
देहु पहिराज भवन।

अन्तरा—देश भर भक्ति देहु श्याम चरण अरु कल्याण करहु भूपाल को
ललित सब परिजन।

+	०			२	०			३			४
								(दुर्गा) सा	मर	पम	प
								मा	ऽऽ	ऽऽ	ता
ध	ध	प	म	मपधप	मर	ध	सां	(मालकोश) सा	मग	धम	नीध
दु	ऽ	ऽ	र्गा	भऽऽऽ	वाऽ	ऽ	नी	मा	लऽ	कोऽ	शऽ
सांनी	सां	सा	नी	ध	म	ग	स	(वसन्त) स	स	म	म
ऽऽ	ऽ	पू	र	न	क	र	हु	अ	रु	ची	ऽ
म	म	मं	मं	म	म	मं	ध	नी	सा	रें	सं
र	व	सं	ऽ	त	ऽ	दे	हु	प	हि	रा	ऽ
नी	ध	प	प	मं	ग	र	स				
ज	भ	व	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽ				

अन्तरा

+	०			२	०			३			४
								(देश) सा	मर	पम	प
								दे	ऽऽ	ऽऽ	श

नी	सं	सं	स	रं	नी	धा	प	म	र	नी	स
भ	ऽ	र	ऽ	भ	ऽ	क्षी	ऽ	दे	ऽ	ऽ	हू
(श्याम कल्याण)								(कल्याण)			
म	प	रमपध	मप	गमप	गम	र	सा	सरगप	ध	प	ग
श्या	म	चऽऽऽ	रन	अऽऽ	ऽऽ	रु	ऽ	कऽऽऽ	ऽ	ल्या	ऽ
								(भूपाली)			
र	नी	र	स	नी	ध	प	प	सर	गप	धसं	रंगं
ऽ	ऽ	ऽ	न	क	र	ऽ	हू	भूऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
								(ललित)			
गं	रं	सां	ध	प	ग	र	स	नी	र	ग	म
पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ल	को	ल	ली	ऽ	ऽ
म	म	मम	म	म	ध	म	ध	नी	ध	म	म
त	ऽ	सऽ	ब	प	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ	ज
ग	म	ग	र	स	नी	र	गम				
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽऽ				

रागों का स्वर विवरण—

१ दुर्गा—गांधार निषाद वर्ज्य हैं। शेष स्वर शुद्ध हैं।
२ मालकोश—रिषभ पंचम वर्ज्य हैं। शेष स्वर कोमल हैं।
३ वसन्त—रीषभ धैवत कोमल, शेष शुद्ध, दोनों मध्यम।
४ देश—दोनों नीषाद, शेष स्वर शुद्ध हैं।
५ श्याम कल्याण—दोनों मध्यम, शेष स्वर शुद्ध हैं।
६ कल्याण—मध्यम वर्ज्य हैं, शेष स्वर शुद्ध हैं।
७ भूपाली—मध्यम निषाद वर्ज्य हैं, शेष स्वर शुद्ध हैं।
८ ललित—दोनों मध्यम, रिषभ कोमल, शेष स्वर शुद्ध हैं।

—o—

ध्रु(व)पद

(लेखक—श्री० बलदेवाग्निहोत्री साहित्याचार्य)

आओ, आओ! प्यारे सङ्गीत आओ!! और तनिक यह तो बताओ कि हम अपने अङ्क में तुम्हारे इस अङ्क का आलिंगन करते हुए क्या समझें?

पहले तो हम इसे ध्रुपद नाम से ही पुकार कर छुट्टी पा लेते, परन्तु अक्तूबर सन् ३८ में जब तुमने दर्शन दिये, तो कुछ ऐसा भान हुआ कि यह अपने अन्दर ध्रुव-पद और धुरपद नाम से पुकरवाने की शक्ति रखता है, किन्तु इतने पर भी चैन कहाँ? जब हमने इसके विषय को समुपलब्ध करने के लिये श्री शार्ङ्गदेव प्रणीत 'सङ्गीत-रत्नाकर' में डुबकी लगा कर श्री सङ्गीत राजभाव भट्ट विरचित 'अनूप सङ्गीत रत्नाकर' में अवगाहन किया तो वहाँ "अथध्रौपद-लक्षणम्" इससे एक नाम का और एडीशन हो गया। इतने पर भी इति श्री नहीं, संस्कृत साहित्य और सङ्गीत के सुचतुर पण्डित सुदर्शनाचार्य जी ने न जाने क्या सोच समझ कर एक क़दम और बढ़ाया और अपने 'सङ्गीत-सुदर्शन' में धुरपद के दकार को तकार में परिवर्तित करडाला। अब बताओ न, कि इस प्रकार 'अनेक नाम रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे' तेरे लिए हम केवल 'ध्रुपदा-ङ्कायनम' इस नमोवाक् द्वारा स्वागतोक्ति बोल कर भला क्यों जाने बूझे अपराधी बनने लगे हैं।

हमारे विचार में तो इन चारों पाँचों नामों का कोई युक्ति-युक्त भेद समक्ष उप-स्थित न होने तक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ध्रुवपद के ही यह सब परिवर्तित स्वरूप हैं और सन्तोष का विषय इतना ही है कि जहाँ अब हिंदी ने बीच के यावनिक-सम्पर्क को तिलाञ्जलि देकर फिर अपनी सस्कृत पदावली को अपनाने की ओर पग बढा दिया है, इसलिये आगे को शुद्ध-संस्कृत शब्दों के विशेष विकृत हो जाने की कमसम्भावना है, वहाँ स्वनामधन्य श्री विष्णुदिगम्बर जी पलुस्कर, श्री विष्णुनारायण जी भातखण्डे और श्री०प० फिरोझ फ्रामजी सङ्गीतशास्त्री के अनथक प्रयत्नों तथा महामना मालवीय जी द्वारा स्थापि हिन्दू विश्व विद्यालय के सङ्गीत-विभाग एवं अब सौभाग्य से 'सङ्गीत' की सागीतिक-प्रेरणा से शिखासूत्र धारिणी आर्य जनता भी अब इसे त्याज्य-कोटि से निकाल कर अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करने लगी है, इसलिए अब हमारा सङ्गीत दूसरी मनोवृत्ति की छूत से निर्भय और निशङ्क है, अन्यथा अभी तो इस बेचारे ध्रुवपद को उर्दू भाषा में लिखा पढ़ा जने पर دھروپد धरोपद, धुरोपद, धिरोपद, धरूपद, धरवपद इत्यादि न जाने और कितने निरर्थक या अनभिप्रेतार्थक नाम सुनने पड़ते। अस्तु।

ध्रुवपद का स्थान हमारे सङ्गीत में कितना ऊँचा है, इस बात को जानने के लिये हम अपने पाठकों से सन् १८९६ में पूना से प्रकाशित 'सङ्गीत रत्नाकर' के चतुर्थ प्रबन्धाध्याय में पृष्ठ ३४४ खोलने का अनुरोध करेंगे। यह वह प्राचीन ग्रन्थहै कि जिसे श्री निश्शङ्क शार्ङ्गदेव जी ने सिङ्घणनृपति (सन् १२१० से १२४७ तक) के समय में

रचा और श्री कल्लिनाथ जी ने सन् १६०८ से पूर्व ही जिस पर कलानिधि नाम की टीका की।

हाँ, तो आपने पृष्ठ ३४४ खोला, उसमें क्या लिखा है ? यही न—

शुद्धश्छायालगश्चेति द्विविधः सूड उच्यते।
एलादिः शुद्ध इत्युक्तो ध्रुवादिः सालगो मतः॥३१२॥
आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठप्रतिमण्ठनिसारुकाः।
अड्डतालस्ततो रास एक तालीत्यसौ मतः ॥३१५॥

आगे चल कर इसी प्रकरण में ध्रुवपद का महत्व पृष्ठ ३५० पर इस प्रकार हमारे सामने आता है—

रासको रासतालेन स चतुर्धा निरूपितः।
विनोदो वरदो नन्दः कम्बुजश्चेति शार्ङ्गिणा॥
आलापान्तध्रुवपदाद्विनोदः कौतुके भवेत् ॥३५३॥
ध्रुवादालापमध्यात्तु वरदो देवतास्तुतौ ॥३५४॥
आलापादेध्रुवपदात् कम्बुजः करुणे भवेत्॥

ध्रुवपद की पर्याप्त प्राचीनता का एक प्रमाण यह भी है कि इसका समावेश शिवमत में है, जो कि सङ्गीत में एक प्राचीन मत माना जाता है।

इस प्रकार उक्त आद्यत्वपूर्ण ध्रुवपद के महत्व को हृदय में स्थान देने पर अब आप यह देखिये कि वह है क्या ? पूना से सन् १९१६ में प्रकाशित अनूप सङ्गीत रत्नाकर पृष्ठ १५ पर यद्यपि शीर्षक में अथ ध्रौपद लक्षणं लिखा है परन्तु उसी की व्याख्यारूप श्लोक १६५ से १६७ तक में यह शब्द विराजमान हैं—

गीर्वाणमध्यदेशीय भाषा साहित्यराजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारी कथाश्रयम्॥
श्रृंगाररसभावाद्यं रागालापपदात्मकम्।
पादांतानुप्रासयुतं पादान्तयुगकं च वा॥
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगान्तरं ध्रुवपदं स्मृतम्॥

विचारने का स्थल है कि जहाँ इस ध्रौपद लक्षण पर 'ध्रुवपदं स्मृतं' देख कर दोनों का अभेद स्पष्ट है, वहां इसी प्रकार अन्यत्र भी इसके अनेक वस्तु होने की सम्भावना वस्तुतः कम ही है। अन्यथा, ऐसा देखने में न आता कि यदि एक ग्रन्थ

ध्रुवपद को लेता, तो वह धुरपदादि को भूल जाता, दूसरा धुरपद को ग्रहण करता तो उसका ध्यान ध्रुवपद पर न जाता और जो ध्रुपद लिखता तो वह ध्रुवपद और धुरपद दोनों को ही धता भेज देता !!!

साथ ही यह कि श्री सुदर्शनाचार्यजी ने अपने 'सङ्गीत सुदर्शन' नामक ग्रन्थ की भूमिका में पृष्ठ १३ पर 'यथा ध्रुवपद (धुरपत) ख्याल" ' इत्यादि लिखा है, इससे उनके विचार में दोनों की एकता स्वयं सिद्ध है ! अस्तु ।

ख्याल टप्पा, ठुमरी, की भांति ध्रुपद भी गान प्रणाली का एक प्रकार है और इनमें धुरपद प्रणाली सबसे प्राचीन है । उक्त श्लोकों के 'रागालापपदात्मकम्' ये शब्द ध्रुपद के गान काल में रागों के आलाप की मुख्यता पर प्रकाश डाल रहे हैं। सङ्गीत-रत्नाकर के उक्त "आलापादिध्रुवपदात् "ध्रुवादालापमध्यात्तु" और "आलापान्तध्रुव-पदात्" ये शब्द भी ध्रुपद में आलाप को मुख्य स्थान प्रदान कर रहे हैं, यह दूसरी बात है कि वह आदि मध्य या अन्त में कहाँ किया जा रहा है । इस प्रणाली के उस्ताद तो गान काल में प्रथम गेय राग का आलाप करते हैं फिर उस राग की सरगमों को और फिर चीजों को गाते हैं ।

आलाप के सम्बन्ध में अनूप सङ्गीत रत्नाकर पृष्ठ १४ पर लिखा है—

ग्रहांशतारमन्द्राणां न्यासापन्यासयोस्तथा ।
अल्प त्वस्य बहुत्वस्य षाडवौडुवयोरपि ॥१४६॥
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते ॥

यही कारण है कि आलाप करना बड़ा क्लिष्ट है । इसे कल्पना शक्ति शाली उस्ताद ही कर सकते हैं । घटों किये जाने वाले आलाप घोखने और रटने की वस्तु नहीं। इनका तो ढंग आना चाहिये और गायक में कल्पना शक्ति होनी चाहिए। आलापकार को चाहिए कि वह राग का स्वरूप न बिगड़ने दे और न उस राग के समीपस्थ रागों से उसका मिश्रण होने दे, साथ ही यह कि कल्पना में प्रतिभा हो, बार-बार उन्हीं आलापों की पुनरावृत्ति न हो, वे मनोमोहक और मर्मस्पर्शी भी हों।

ध्रुवपद का ध्रुव शब्द 'ध्रस्थैर्यगत्यो , ध्रुव इत्येके' इस धातु से सिद्ध होता है । अत ध्रुव का अर्थ स्थिर है, आपने देखा है कि ध्रुव सब दिशाओं में चक्कर नहीं लगाता फिरता, वह तो अपनी उत्कृष्ट उत्तर दिशा में ही चमकता है । उसी प्रकार इस ध्रुवपद में एक स्थिरता है और वह स्थिरता क्या है ? इसके लिए अखिल भारतीय सङ्गीत विद्यापीठ के संस्थापक सङ्गीत भास्कर सङ्गीतशास्त्री श्री० पं० रामसेवक जी अपने सङ्गीतरत्न में पृष्ठ २६-२७ पर लिखते हैं कि—"ध्रुव का अर्थ अटल, पद का अर्थ गायन (गीत) है । जो पद (गान) अटल रूप से गाया जाता है, जिसकी लय खम्भ के समान गड़ी हुई हो और जिसमें तानों का प्रयोग नहीं होता उसे 'ध्रुवपद' कहते हैं । यह गायन ख्याल से प्राचीन और अधिक प्रशंसनीय है ।"

ध्रुवपद की स्थिरता का अनुमान कराने में ख़याल की चपलता का विचार भी सहायक है, अतः यहीं हम अपने पाठकों को यह भी बता देना चाहते हैं कि ख़याल गाने में गला फिराया भी जाता है, परन्तु ध्रुपद गाने में कभी भी गला नहीं फिराया जाता, किन्तु इसमें कंठ को अकम्पित स्थिर रखना पड़ता है। दूसरे यह कि ख़याल की अपेक्षा ध्रुपद में राग का स्वरूप भी भारी प्रतीत होता है। ध्रुपद और ख़याल का पारस्परिक भेद ऐसा ही समझना चाहिये जैसा कि हाथी और घोड़े की चाल का। यही ध्रुवपद की ध्रुवता है।

धुरपद और ख़याल का भेद दिखाते हुए श्री सुदर्शनाचार्य जी लिखते हैं कि ख़याल के उस्ताद उसे गाने में पहले ख़याल गाकर, तव उस राग में फ़िकरेबन्दी (कंपितकंठ से तान-कल्पना) करते हैं, कोई-कोई तराना भी गाते हैं। धुरपद और ख़याल की तानों में भेद है, किन्तु वह लिखने में कठिन है, ऐसे भेद तो गुरुजनों से प्रेक्टिकल जानने चाहिए। धुरपद के गाने में जितनी गम्भीरता है उतनी ख़याल में नहीं और टप्पे में तो उससे भी कम है। ख़याल टप्पे गाने वालों का कंठ धुरपद गाने योग्य नहीं रहता, क्योंकि उनके कंठ में ध्रुपदनिषिद्ध कम्प उत्पन्न हो जाता है। ध्रुपद में तो तानसेन और उनके वंशजों ने बड़ी ही लम्बी सांस की तानें रख दी हैं, ध्रुपद के स्थाई आदि खण्ड समाप्त होने से पूर्व सांस न टूटनी चाहिए। अज्जूखां को तो समग्र एक ध्रुपद को एक सांस में गाने का अभ्यास था। तानसेन के दौहित्र वंश ने धुरपद में वीणा की तान रख कर उसे और भी क्लिष्ट कर दिया। धुरपद की तानों का यह मर्म है कि उन्हें उस्तादों ने जिस रूप में वताया है, वह उसी रूप में रहें।

ध्रुपद और ख्याल का प्रकरण आजाने से हम अपने प्रेमी पाठकों के सम्मुख इनका कुछ इतिहास भी रखते चलें। ध्रुपद की प्राचीनता तो सङ्गीतरत्नाकर से सिद्ध हो चुकी, आधुनिक काल में उसके आरम्भ का कोई प्रमाण नहीं। वह तो इसका अन्तिम समय है कि जब श्री-हरिदास स्वामी, तानसेन और वैजू जी इसके आचार्य रहे। तानसेन के वंश में रहीमसेन अमृतसेन का सितार ध्रुपद विद्या के नाश का कारण वन गया। इसमें जिस नासमझ और दुःसाहस पूर्ण मनोवृत्ति ने काम किया, वह यह थी कि रहीमसेन ने अपने पिता सुरवसेन के मरने पर उनकी अपेक्षा ध्रुपद का गान वैसा सुन्दर कर सकने वाले चाचा ताऊओं से ध्रुपद सीखने की इच्छा न की, किन्तु विवशतया अपने ससुर दूलहखां से सितार सीखा। तव सितार की कुछ गिन्ती न थी, किसी ने इन्हें चिढ़ाकर कह दिया 'कि अव तो डिड़ डा डिड़ डाड़ा बजाया करो' बस यह चिढ़ गये और क्रोध में आकर यहां तक कह गये कि-'भाइयो, यह ठीक है कि ध्रुपद के आगे सितार दो कौड़ी का है, धुरपद रत्न के तुल्य है, और सितार कंकड़ के, परन्तु इस कंकड़ को रत्न के वरावर न बनादूं तो बात ही क्या? और सितार में वीणा ख़याल धुरपद तीनों को भरा। अन्यथा, ध्रुपद और मृदङ्ग का साथ था।

मृदङ्ग एक शास्त्रोक्त आनद्ध ताल वाद्य है, तबला तो यवन काल में वेश्याओं के पीछे-पीछे फेंट में बाधकर फिरने के सुभीते से मृदङ्ग के आधार पर उसके एक विकृत रूप में उपस्थित कर दिया गया, सो यह मृदङ्ग की समता को कभी इस लिए नहीं पहुँच सकता कि मृदङ्ग मे लगाये जाने वाले आटे की कमी व अधिकता करते हुए उसकी ध्वनि में जो बात क्षण-क्षण में नये ढंग से आ सकती है, वह सदा के लिए एक बार लग जाने वाले काले मसाले के तबले मे कहा। दूसरे यह कि संगीत से रोगनाश करने में भी मृदंग ही सहायक हो सकता है, क्यों कि उसमें रोगानुकूल गिलोय आदि के रस मे पिसा हुआ आटा बड़े सुभीते से लगाया और हटाया जा सकता है, तबलचियों के तबले में वह गुण और उपयोगिता कहा? मृदंग वादन में अन्त में कदऊसिंह ने बहुत कीर्ति पाई, सुनते हैं कि इनके गणेश-परन बजाने पर हाथी ने इनके आगे मत्था झुका दिया। मृदंग की प्राचीनता में कवि-शिरोमणि भारतीय-शेक्सपियर कालिदास के रघुवंश सर्ग १३ के इस ४० वे श्लोक से अधिक क्या ज्वलन्त प्रमाण हो सकता है कि—

> तस्यायमन्तर्हित सौधभाजः प्रसक्त सङ्गीतमृदङ्ग घोषः।
>
> वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥

इसमें कहा है कि पञ्चाप्सर नामक क्रीडा सरोवर के जल के भीतर विद्यमान भवन मे विराजमान शातकर्णि के बजे हुए संगीत-मृदंग की ध्वनि आकाश में पहुंच कर श्री रामचन्द्र जी के पुष्पक-विमान की चन्द्रशालाओं (ऊपरी घरों) तक को क्षण भर के लिए अपनी गूंज से शब्दायमान कर देती है।

तालवाद्य मृदंग से सम्बद्ध ध्रुपद के सम्बन्ध मे जहा उसे हानि पहुंचाने वाले सितार नामक 'तत' राग-वाद्य की एक चिढन-पूर्ण उपस्थित हुई, वहा इस शास्त्रीय-गान को लुप्त करने के लिए कुछ ऐसी ही ईर्ष्या, द्वेष पूर्ण दुष्ट मनोवृत्ति से ख्याल की उत्पत्ति हुई। क्यों कि ऐसा सुना जाता है कि शाही दर्बार में धुरपद का गाना होते समय तानसेन के दौहित्रवंशीय वीणाकारों को धुरपदी-गायकों के पीछे बैठ कर वीणा बजानी पड़ती थी, इसमे उन्होंने निरादर जानकर पीछे बैठ कर वीणा बजाना त्याग दिया, इसलिए इनका दर्बार बन्द हो गया, तब इसका बदला लेने के विचार से इस दौहित्रवंशीय सदारंग ने ख्यालों की रचना कर उसे दो भिक्षुक बालकों को सिखा, वजीर द्वारा दर्बार में प्रवेश पाया। उन दोनों बालकों से भविष्य में डूम लोगों ने ख्याल सीखा। ख्याल विद्या के अन्तिम समय मे हस्सूखा, हद्दूखां और नत्थेखा, इन तीन भाइयों और रीवा के ममदखा ने बड़ी कीर्ति पाई। हस्सूखा के ३ शिष्य बाबा दीक्षित (नीलकण्ठ), वासुदेवराव जोशी व बड़े बालकृष्णबुआ हुए, जोशी के शिष्य बाल-

कृष्णबुआ और इनके शिष्य श्री विष्णुदिगम्बर जी पलुस्कर हुए। हद्दूखां जी से शङ्करगांधर्व विद्यालय ग्वालियर के प्रिन्सिपल श्री कृष्णराव शङ्कर पंडित के पिता श्रीशङ्करराव पंडित जी ने गायन सीखा।

उधर हमारे सुदर्शनाचार्य जी ने तानसेन के वंशज (मुरादसेन के पुत्र सुखसेन के पुत्र रहीमसेन के पुत्र-) अमृतसेन जी को अपना उस्ताद बनाया, वह लिखते हैं कि यह तानसेन वंश के धुरपदियों के गुवरहारे गोत के थे, यद्यपि यह सभा में गाते न थे, तो भी ध्रुपद में बड़े प्रवीण थे) इनके मुख से जैसा धुरपद निज में सुना वैसा इनके भी घर में दूसरे के मुख से न सुना। सुखसेन भी धुरपद के भारी उस्ताद थे, उनके पिता और पितामह भी ऐसे ही थे। सुखसेन के भाई बहादुरसेन के पुत्र हैदरबख्श ध्रुपद के अन्तिम बादशाह हो गये हैं, ये ऐसे साहसी थे कि प्राण निकलने से केवल एक घण्टा पूर्व इनके पुत्र ने एक धुरपद पूछा सो उस समय भी अच्छी तरह बता दिया। यह अमृतसेन के मामा ? (बाबा की सन्तान होने से बाप के भाई हुऐ होते, न कि बाप के साले ?) थे। इनके पुत्र मम्मूखां भी अच्छे ध्रुपद के ज्ञाता थे। अमृतसेन के दादा लगने वाले मसीतखां के भांजे दूलहखां भी धुरपद में बड़े प्रवीण और भारी उस्ताद थे। सुखसेन जी के भाई नूरसेन के सगे परपोते के पुत्र आलमसेन बड़े ही सुरीले और धुरपद के नामी विद्वान हुए, इनके साथ तानसेन वंश का सभा में धुरपद का गाना अस्त हो गया।

इस प्रकार यह हमने माना कि सौभाग्य या दुर्भाग्य से वर्तमान काल में भारतीय संगीत को उन्नत पद दिलाने वाले प्रायः सभी शिखा-सूत्र धारियों की उस्तादी का पद मुसलमान उस्तादों को है, और हम उनमें से जिन्होंने दिल खोलकर अपने इन शिष्यों को संगीत-शिक्षा दी, सच्ची श्रधांजलि समर्पित करते हैं। परन्तु, जहां उधर तो मुसलमानों को इसका गर्व इसलिये न करना चाहिये कि 'बन आयो ब्यास' जो बाद में मियां तानसेन कहलाये, वे जन्म से मुसलमान न थे, किन्तु ग्वालियर के गौड़ ब्राह्मण श्री मकरंद पांडे के पुत्र थे, गुरु भी इनके श्री हरिदास स्वामी जी थे, कि जिनके संगीत को सुनने लिये बादशाह अकबर तानसेन के नौकर बन बगल में उनका तुम्बूरा उठा उन के साथ स्वामी जी की सेवा में पहुंचे थे, और जिनके गान को सुन कर अकबर के आनन्द की सीमा न रही थी। दूसरे यह कि खां, बख्श और हैदर लगने से पूर्व हम तो तानसेन की वंशावली में बड़ी दूर तक सूरजसेन सुफलसेन रूपसेन, लालसेन; इत्यादि हिन्दुस्तानी नामी हो पाते हैं:—

वहां, इधर यदि हम यह चाहते हैं कि संसार में भारतीय-सङ्गीत का उचित आदर सम्मान हो, यदि हम अपने उसी महर्षिमनु वर्णित पद पाने के इच्छुक हैं कि:—

एत द्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

यदि हम उन लोगों की आख खोल कर उन्हें कुछ सुझाना चाहते हैं कि जो शास्त्र प्रयोग के ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करते हुए भी आख मींचकर भारतीय-सङ्गीत को शास्त्र-विहीन कर डालते हैं। यदि हम पाश्चात्य लोगों के समक्ष दोनों पद्धतियों के दक्ष-जनों का यह निश्चय प्रगट कर देना चाहते हैं कि भारतीय-सङ्गीत पद्धति अत्यन्त रसीली और यूरोपीय पद्धति से मधुरतर है। यदि हम यह दिखा देना चाहते हैं कि यूरोपीय पद्धति में जो अलङ्कार हैं वे तो सब भारतीय पद्धति में हैं हीं, परन्तु भारतीय पद्धति के गमकस्थायादि मनोहर अलङ्कार यूरोपीय-पद्धति में बिल्कुल नहीं हैं, साथ ही यह कि यूरोपीय आनद्ध वाद्यों में मुरज जैसा एक भी वाद्य नहीं है और न उसकी पाठ-पद्धति।

शास्त्रीय भारत-संगीत की तो उन्नति के प्रेमियों का कर्तव्य स्पष्ट है उन पर ध्रुपद जैसी शास्त्रीय विद्याओं के सुधार और उद्धार का भार अनिवार्य है और इसके लिये यह आवश्यक ही नहीं किन्तु परमावश्यक है कि हम न केवल अपने संगीत-विद्यार्थियों, किन्तु संगीत-शिक्षकों को भी संस्कृत भाषा का अध्ययन करावें। जिससे कि वे शास्त्र ग्रन्थों का अध्ययन कर संगीत-गंगा के गंगोत्तरी-प्राप्त निर्मल जल का आस्वाद लेते लिवाते हुए यह दिखा सकें कि हुगली में प्राप्त जिस गंगाजल पर संसार लट्टू हो रहा है, वह तो उस पवित्र जल का वह विकार युक्त स्वरूप है कि जिसमें बीच के न जाने कितने स्थानों का असंस्कृत जल आ मिला है, और जिस संस्कृत-भाषा के आधार पर प्रत्येक संगीत-विद्यार्थी धातु से शब्द-निष्पत्ति के साथ ही उसके स्वरूप से कुछ न कुछ परिचित होने लगे-यथा —"आलाप्यते इति आलाप" "तालस्तल-प्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृत । गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठतम् ॥ (संगीत-रत्नाकर पञ्चम तालाध्याय दूसरा श्लोक)" एवम्—

"ध्रुवं पदं यस्य तत् ध्रुवपदम्"।

उस सुवर्णयुग में हमारा साधारण से साधारण संगीत-छात्र भी इस विग्रह के साथ शब्द-सिद्धि और उसके शुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन करता हुआ सर कादिर जैसे बड़े-बड़े लोगों के सरों को चक्कर खिला देगा। वह तनिक देर में दिखला देगा कि पक्षपात वाला चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसे पर-गिरे कबूतर की भांति गिरना पड़े, और फिर गिरना पड़े! क्यों? इसी लिए कि पक्षपात पक्ष (पंखों का)-पात (गिरना) ही ठहरा। वह तुरन्त कहेगा कि यह ख्याल नहीं है कि जिसका उर्दूपन

उसके नाम से ही स्पष्ट है। अगर उसका नुक्ता आपके दिमाग़ में है तो इसकी मात्रा पर हमारा ही अधिकार है। अगर यह मुस्लिम कला है तो बताइये न कि ध्रु(व) पद की अर्बी या फ़ारसी तरीक़ पर क्या तशरीह है। बस प्रतिपक्षी की उड़ान बन्द हो जायगी और यदि वह ईमानदार हुआ तो उसे डा० गिलरिबस्ट के शब्दों में यह कहना पड़ेगा कि:—

"प्राचीन काल में हिन्दूलोगों को गाना बजाना व नाचना बहुत अच्छा आता था। फिर मुसलमानों ने हिन्दू संगीत–शास्त्र का रक्षण न करके उसके नियमों का अवलम्बन किया। वह अपने गवैयों को कलावंत, कवाली, ठहारी या ढाढ़ी कहते थे। उनके गवैये रेख्ता, ग़ज़ल, मर्सिया, ख्याल, टप्पा, कोल, तराना गाते थे, और हिन्दू लोग ध्र (व) पद, गीत, भजन, व करका इत्यादि।"

यही नहीं, किन्तु यदि उसे यह ज्ञात है कि तानसेन के मुसलमान हो जाने पर भी उनके वंश में अभी तक हिंदू धर्म की बहु- सी प्रथायें चली आती हैं, जैसे— दीवाली की रात को सरस्वती और वाद्यों का पूजन, विवाह में वर कन्या के जन्म-पत्र लिखवा कर पूजन। निकाह होने पर भी एक बार हिन्द–मंडप जैसे मंडप में बैठना और उस दिन स्त्रियों का धोती पहिनना आदि। तानसेन जी बहुत से ब्राह्मणों को गौऐं मोल ले देते थे। पान के अतिरिक्त मद्य को तो ये छूते भी नहीं। अमृतसेन एक संयमी पुरुष थे। शराबियों के छुए पान और पानी से भी इन्हें ग्लानि थी। साधु भक्त थे। हिंद धर्म की अपने कुल में चली आने वाली प्रथाओं के पूर्ण निर्वाहक थे।

तो वह निःसंकोच हिन्द–म्यूज़िक की इस घोषणा के सामने अपना मस्तक झुका देगा कि:—

Drupad is the highest from of our Music, its voice is deep, airs are grave, its singing is solemn and time slow and complex. It is not only difficult to sing but difficult to appreciate (which is for off from the understanding of a Muslim). It was firstly tuned in the age of Sarang Deo."

——*:*——

भारतीय नृत्य और संगीत

(श्री शैलेन्द्र कुमार)

अपनी उत्कट अनुभूतियों का प्रकटीकरण—यही कला का मूल उद्देश्य होता है। समाज-जीवन और व्यक्ति-जीवन—इनमें हमेशा से संघर्ष चला आरहा है। संगीत और नृत्य यह भी कला है। कला के लिये एक निर्माण-तंत्र (Technique) की आवश्यकता होती है। यह तंत्र परिस्थिति-निरपेक्ष नहीं हुआ करता। ऐसा होने से कला में एक प्रकार की निर्जीवता आ जाती है, इस लिये इस तंत्र का सरस होना अत्यन्त आवश्यक है।

ब्रिटिश हुकूमत के जो घातक परिणाम हुए हैं, उनमें से एक यह भी है कि उपर्युक्त दो कलाओं की ओर से हम कुछ उदासीन से हो गये हैं। राष्ट्रीय भावना वंशपरम्परा, भाषा, दर्शन, धर्म तथा कला का एकीकरण और सामंजस्य से उत्पन्न होती है। हम इन सब बातों को भूल से गये हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि इन दो कलाओं के बारे में हमसे अक्षम्य अपराध हुआ है।

दास्य दो प्रकार का हुआ करता है। एक शारीरिक, दूसरा सांस्कृतिक दास्य के आने के पश्चात राष्ट्र का स्वतन्त्र अस्तित्व ही मिट जाता है। जिस दूसरे राष्ट्र की संस्कृति को हम अंगीकार करते हैं, उसकी हम मानस-सन्तान (Mind-born sons) बन जाते हैं।

आज कल हिन्दुस्तान में यही दशा है। राष्ट्र के सच्चे इतिहास से अपरिचित होने के कारण कला और दर्शन सम्बन्धी विचारों का प्रचण्ड आयात विदेशों से हो रहा है। हमारे विचारवान् लेखक और कलाकार जीवन की ओर इसी विदेशी-चश्मे में से देखते हैं, किन्तु विकासोन्मुख राष्ट्र की यह उदासीनता ज्यादा देर नहीं रह सकती। काल के अखण्ड प्रवाह में कुछ ऐसे स्वतन्त्र विचार और वृत्ति वाले लोग पैदा हो ही जाते हैं, जिनके आजीवन परिश्रम और तपस्या का फल यह होता है कि राष्ट्र का सच्चा इतिहास लिखा जाता है। १६०५ के बङ्गाल-विभाजन से राष्ट्र में नव-जीवन की लहर उठी। पाश्चात्यों की नक़ल करने वाले बहुत से बहुरूपिये कलाकार और विचारवान् इस बाढ़ में बह गये। राष्ट्रीयता का कोमल पौदा द्रुतगति से बढ़ने

और फैलने लगा। देश भर में जागरण की स्वास्थ्य-वर्धक वायु चल पड़ी। लोगों का ध्यान राष्ट्रीय कला और संगीत की ओर आकृष्ट हुआ और नृत्य तथा संगीत के सम्बन्ध में लोगों के हृदय में एक अभिनव जिज्ञासा पैदा हुई। कुछ लोगों ने इस विषय में संशोधन करके यह मत स्थिर किया कि हमारे यहां नृत्य और संगीत के केवल दो ही रूप पाये जाते हैं, एक धार्मिक और दूसरा दर्बारी।

प्रकृति में देवताओं का वास हुआ करता है, यह कल्पना हमारे यहां इतिहास काल से भी पहले से प्रचलित है। यवन-संघर्ष ने उन दिनों विकटतम रूप धारण कर लिया था। प्रकृति की जो अनेकानेक शक्तियां हैं, उनको भी नृत्य और संगीत की सहायता से प्रफुल्लित करने में लोग दत्तचित्त थे। निःसहाय-मानव-समाज आकाश की ओर आँखें लगाये ईश्वर की प्रार्थना किया करता था। नतीजा यह हुआ कि तत्कालीन समाज में नृत्य विशेषज्ञ और संगीतज्ञ लोगों का एक वर्ग वन गया। देश को समृद्ध करने के लिये प्राकृतिक शक्तियों और देवी देवताओं को रिझाना, यही इनका एक मात्र कर्तव्य रह गया। इसमें भी स्त्रीत्व की प्रधानता' थी। वे आजीवन अविवाहित रह कर यह कार्य किया करती थीं। यह जमाना दुर्बल भक्तिमार्गी कवियों का था। मानवीय बुद्धि ने प्रकृति को अभी अपना दास नहीं बना पाया था। जन-साधारण का उत्साह और उनकी आशा मर सी गयी थी।

इसके उपरान्त विदेशीय-आक्रमण-युग आया। देश देशान्तरों में भारतवर्ष 'स्वर्ण-भूमि' के नाम से प्रख्यात है। अपने देश में असफल कुछ साहसी लोगों ने (बावर जैसे) इस देश पर आक्रमण किया। हमारे यहाँ की फूट से लाभ उठाकर उन्होंने अपना साम्राज्य स्थापित किया। इतने दिनों की अतृप्त सुखतृष्णा फिर साकार होकर सन्मुख आई। कला केवल आनन्द-प्रदान के लिये है—यह विचार दृढ़ हुआ। ग़रीव कलाकारों को राजाश्रय मिला और कला का गला घोंट दिया गया। कला जनता का स्फूर्ति-उपकरण नहीं है, वरन् आलसी और कायर अमीरों के क्षणिक मनोविनोद का साधन है—यह भावना दृढ़ हुई।

कलाकार और कला-कृति इनमें पिता पुत्रवत् सम्वन्ध है। प्रसूति के समय जननी का वेहोश होना, यह प्रकृति का अटल नियम है। निर्माण का क्षण कलाकार के लिये एक सूक्ष्म और अनुभूत आनन्द से भरा होता है। एक मधुर विस्मृति में वह लीन रहता है। कलाकार और व्यवसायिक—इनमें यही भेद होता है। व्यवसायी की नज़रों में अपनी कलाकृति के लिये ऐसी आत्मीयता के भाव नहीं रहते। इस समय नृत्य और सङ्गीत कला नहीं वरन् पेशा समझे जाते हैं। कलाकारों का सामाजिक पद श्रमजीवियोंके वरावर होता है। वे कलाकार (Artists) नहीं, वल्कि मज़दूर (Artisans) समझे जाते हैं

सङ्गीत और नृत्य में जो प्रचण्ड शक्ति अतर्हित है, उसका हमारे विचारकों को रत्ती भर भी ज्ञान नहीं। वह सङ्गीतज्ञों तथा नृत्यकारों को उदर-पोषक व्यवसायी समझते हैं, उनको अपने कर्तव्य की विस्मृति सी हो गई है। इसके साथ में यह भी कह देना चाहता हूँ कि हमारे कलाकार भी अपने उत्तरदायित्व तथा उच्चतम आदर्श को भूल बैठे हैं। मेरे विचार में उपर्युक्त दो कलायें ज्यादा लोकाभिमुख होनी चाहियें। आजकल हिन्दुस्तान के प्रत्येक कोने से यह खबर सुनाई देती है कि इनके पुनर्जीवन के लिये जी तोड़कर परिश्रम हो रहा है। बङ्गाल में, युक्तप्रान्त में, मद्रास में, प्रत्येक स्थान पर लोग इसके पुनरुद्धार के लिये प्रयत्नशील हैं। बात तो अच्छी है, लेकिन डर यह है कि ये लोग फिर भी उसी पुरानी लकीर के फकीर न बने रहें।

हमारी भौतिक परिस्थिति में क्रातिकारी परिवर्तन हुए हैं, लेकिन यह देखा जाता है कि हमारे नृत्य और सङ्गीत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उत्साह-प्रदान यही कला का लक्ष्य (Mission) है। विभिन्न भौतिक परिस्थिति में उत्पन्न हमारे नृत्य और सङ्गीत आज कल की बदली हुई परिस्थिति में उतने उपयोगी और उपकारी नहीं हो सकते, इसलिये इनमें भी संशोधन होना चाहिये।

किसी शुभ-उद्योग में लग जाने के लिये हमें प्रोत्साहित करनेवाले पाश्चात्य ही हैं—यह कटु सत्य है, फिर भी कुछ महान आत्माएं इस क्षेत्र में काम करही रही हैं। अपना देश त्याग कर दूसरे देश की कला के लिये यह असिधारा व्रत करना त्याग की पराकाष्ठा है। इन्हीं लोगों में श्रीमती रागिनी देवी भी हैं। बड़े दुःख की बात है कि ऐसे लोगों की ओर हम शङ्का और संशय की दृष्टि से देखते हैं। रागिणी देवी ने भारतीय नृत्य और सङ्गीत की सेवा में सब कुछ कुर्बान कर दिया है। नृत्य और सङ्गीत का उन्होंने शास्त्रीय और वस्तु-निष्ठ (Scientific & objective) दृष्टि से अध्ययन किया है। आज तक हमें ऐसे ग्रंथ का अभाव बहुत खटकता था। रागिणी देवी के प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ से यह अभाव मिट जायगा। वे इस विषय पर अधिकार पूर्वक कलम चला सकती हैं। मद्रास में 'कथाकाली'-नृत्य का पुनर्जीवन और 'कला-मन्दिर' की स्थापना यह उन्हीं के अथक परिश्रम का फल है।

—(०)—
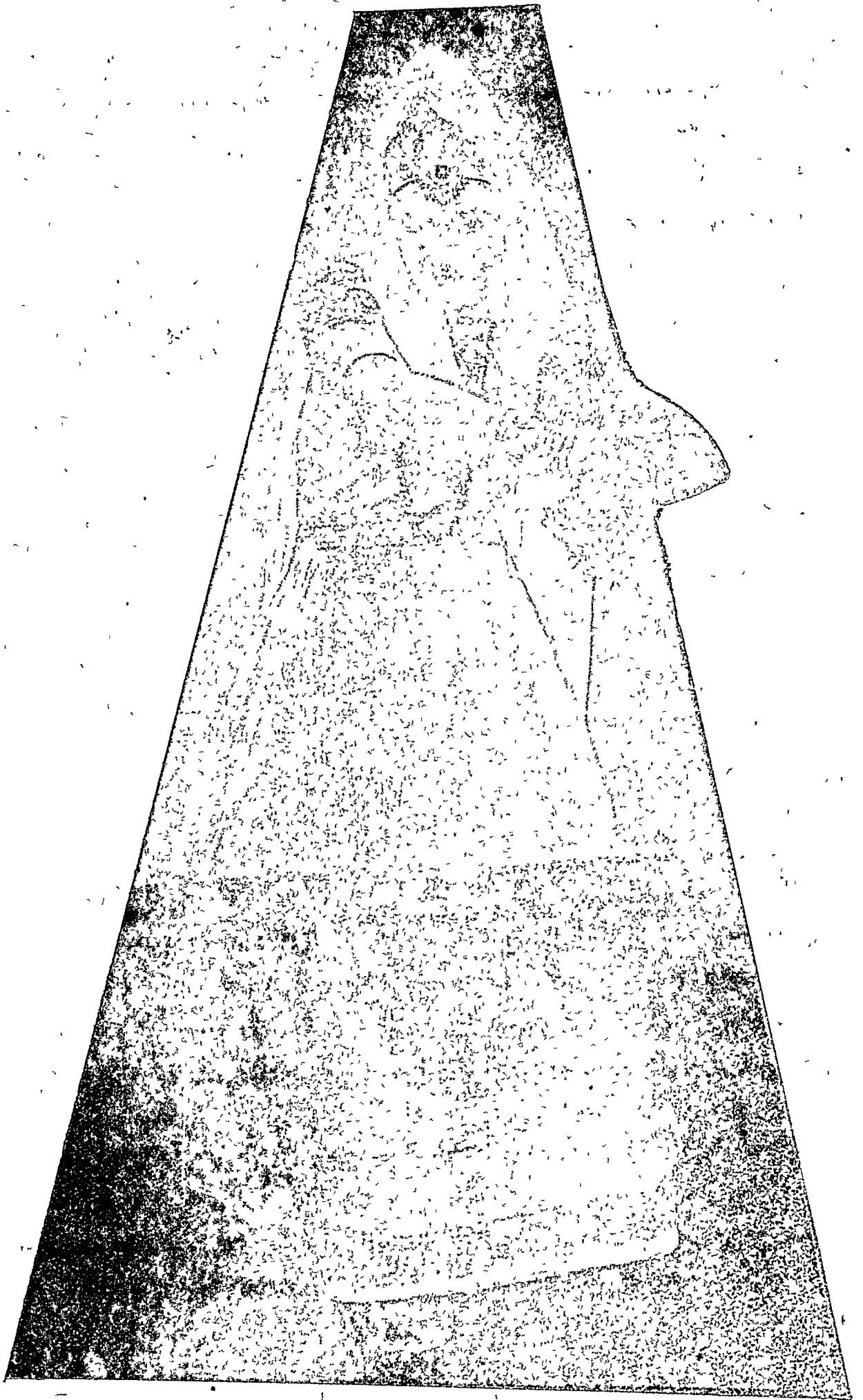
साधना बोस का एक डान्स पोज़

' सङ्गीत '

परिशिष्टांक (फरवरी १९३९)

ललना-पलना, ललना-पलना...!

रागदेश, ताल कहरवा	बौम्बे टाकीज़ कृत 'जीवनप्रभात'	देविकारानी ने गाया

बने चांदनी का पलना, झूले चंदा सा ललना।
चन्द्र किरन की डोर लगे, तारा गन के फूल टके।
पवन झकोरे आन झुलावे, परियां आकर लोरी गावें।
सरस सुनहरी चन्द्र रात, होगी मेरा "जीवन प्रभात"।
ललना पलना, ललना पलना.........................॥

—स्वरूप—

स - - - - र म प ध म प न ध प - - - म प न सं रं - - - न ध प ध म ग र -

स्वरलिपि

+				।				+				।			
व	ने	ऽ	चांऽ	ऽ	द्	नी	ऽ	का	ऽ	प	ल	ना	ऽ	ऽ	ऽ
र	म	-	मप	र	म	प	ध	न	ध	प	ध	प	-	-	-
झू	ऽ	ले	ऽ	चं	ऽ	दा	ऽ	सा	ऽ	ल	ल	ना	ऽ	ऽ	ऽ
र	म	र	म	र	म	प	ध	न	ध	प	ध	प	-	-	-
मप	मन	धन	पध	मप	मध	पध	मप	गम	गप	मप	गम	रग	रम	गर	नस
चं	ऽ	द्र	किऽ	र	न	की	ऽ	डोऽ	ऽ	र	लऽ	गेऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
स	सं	सं	संरं	सं	न	ध	प	मप	ध	म	मग	रग	मग	रग	रस
ऽ	ताऽ	रा	ऽ	ग	न	के	ऽ	फूऽ	ऽ	ल	टऽ	केऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
-	संरं	सं		सं	न	ध	प	मप	ध	म	मग	रग	मग	रग	रस

रग सर - मप रम	पध मप धन धन	पध मप नसं रंम	गंरं संन धप मग
प व न भ	को SS रे SS	आऽ SS न कु	लाऽ SS वे ऽ
र म म म	प पन ध धन	पध पध म न	धन धन प –
प रि या ऽ	आ SS क रऽ	लोऽ SS री ऽ	गाऽ SS वें ऽ
र म र म	प पन ध धन	पध पध म न	धन धन प –
स र स सु	न ह री ऽ	च ऽ न्द्र रा	ऽ त हो ऽ
म म म म	प प न –	न सं सं न	सं स स –
गी ऽ मे ऽ	रा ऽ जी ऽ	व न म भाऽ	ऽ त ल लऽ
न सं रं गं	रं सं रं न	स सं स पसं	– सं न नध
नाऽ ऽ प ल	ना ऽ ल लऽ	नाऽ SS प लऽ	ना ऽ ऽ ऽ
मप ध म मग	र – प पध	मध पध म मग	र – – –

"संगीत सागर" से सभी सन्तुष्ट हुए हैं!

(सम्मति न० २२)

सम्पादक जी जयरामजी की!

'संगीत सागर' की वी० पी० मिली। जैसा इसका नाम है वास्तव में यह वैसी ही पुस्तक है, प्रत्येक संगीत प्रेमी को इसकी १ प्रति अवश्य रखनी चाहिये।

श्री० प्रसिद्धनरायनसिंह ब्राञ्च पोस्ट मास्टर—मभगवां।
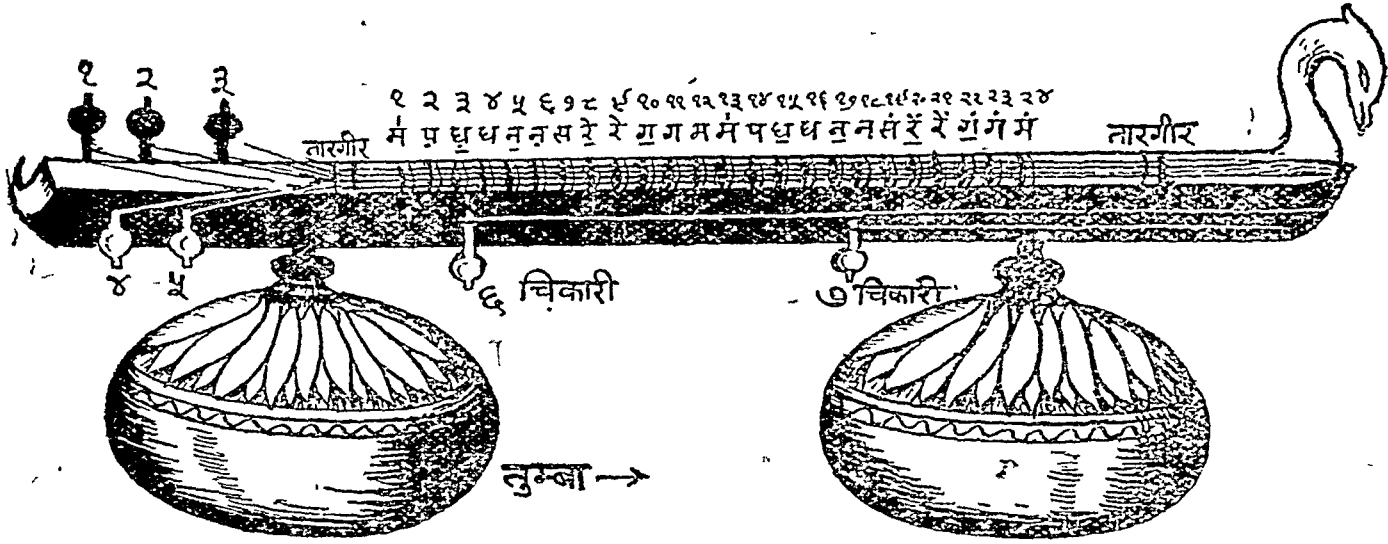
(लेखक—श्रीयुत् शिवशङ्कर जोशी, देहली)

श्रीजोशीजी का वीणा पर यह लेख, जिसकी हमारे पाठक बहुत प्रतीक्षा कर रहे थे। लेख हमारे पास आया हुआ रक्खा था, हम चाहते थे कि यह विशेषाङ्क में ही दिया जाय। जोशी जी के जलतरङ्ग, दिलरुबा सपेरे की बीन इत्यादि प्राचीन वाद्यों के लेख सङ्गीत में प्रकाशित हो चुके हैं जो कि पाठकों ने बहुत पसन्द किये हैं, आशा है इस लेख को 'वीणा' प्रेमी ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे और यथोचित लाभ उठायेंगे।

वीणा एक प्राचीन वाद्य है। यह नारद वीणा के नाम से भी प्रसिद्ध है। वर्तमान समय में कई प्रकार की वीणा नये-नये डिज़ायनों की देखने में आती हैं। वीणा का आविष्कार भगवान शङ्कर ने किया था, ऐसा प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है। इसके आविष्कार का कारण इस प्रकार लिखा है—

एक बार देवी पार्वती को श्री महादेव जी ने इस प्रकार शयन करते हुए देखा कि उनके दोनों हाथ (चूड़ियां पहिने हुए) दोनों छातियों पर रक्खे हैं और वे सीधी (चित्त) सो रही हैं। महादेव जी ने पार्वती जी की दोनों छातियों के रूप में २ तुम्बे और हाथों को डांड के रूप में बना कर वीणा तैयार की और चूड़ियों के स्थान पर तरबें लगा दीं, इस प्रकार वीणा का आविष्कार किया।

वीणा के मुख्य-मुख्य भाग ।

(१) डाड (वास या लकड़ी की)
(२) तूंबा दो ।
(३) सारें २४ ।
(४) मोर या अन्य चोंचदार पक्षी का मुंह १ ।
(५) खुंटिया ७
(६) शाम, तार इत्यादि ।

वीणा बनाने की विधि ।

वास या लकड़ी की १ डाड लेकर उसे दो बराबर भागों में चीर कर अन्दर से खाली (खोखली) करो, फिर उन दोनों भागों को मिला कर सरेस से जोड़ दो, फिर इनको लोहे के तार अथवा लोहे की शामों से ३ स्थानों पर कस दो । अब सात सूराख खूंटियों के वास्ते—पाच वाई ओर के सिरे पर और दो मध्य में बनाओ, इनमें खूंटिया भली प्रकार कस दो, फिर २४ सारें लो और उनको पीतल या लोहे की पतली चद्दर से मंढ़ लो, फिर इन्हें डांड पर मोम या सरेश से जमा दो । अब दोनों तुम्बों को डांड के दोनों सिरों पर (कुछ-कुछ सिरा छोड़कर) लगा दो, फिर मोर या और किसी चोंचदार शक्ल को (जो कि हाथी दांत या हड्डी की बनी हुई हो) डाड के दांई ओर इस प्रकार लगाओ कि उसके दोनो पंख डाड के दोनों ओर रहें । इसके बाद पहिली खूंटी न० १ में ताम्बे का तार, न० २ में लोहे का तार, न० ३ में पतला तार लोहे का, न० ४ में ताम्बे का तार, न० ५ में लोहे का तार और न० ६ तथा ७ में लोहे का पतला तार डाल दो । ध्यान रहे कि न० ६ व ७ के तार पक्षी के पंखों पर से होते हुए जाने चाहिये (यह सब तार पक्के होने चाहिये) अब वीणा तैयार है । आवश्यकतानुसार इस पर रंग रोगन कर सकते हैं ।

तारों के मिलाने की विधि और सारों के नाम ।

खूंटी न० १ के तार को परज अर्थात् 'स' से मिलाओ ।

,,	२	,,	मध्यम	,,	म॑ (तीव्र) से मिलाओ ।
,,	३	,,	परज (टीप)		सं से मिलाओ ।
,	४	,,	परज अर्थात्		स ,,
,	५	,,	पञ्चम	,,	प ,,
	६	,,	परज (टीप)	,,	स ,,
,,	७	,,	परज (टीप)	,,	सं ,

अब सारें बांई ओर से दांई ओर को गिनते हुए निम्नलिखित स्वरों में मिलाओ।

प्रथम सप्तक	दूसरी सप्तक	तीसरी सप्तक
१—म॑ (तीव्र)	८—रे॒ (कोमल)	२०—रें॒ (कोमल)
२—प़ (अचल)	९—रे (तीव्र)	२१—रें (तीव्र)
३—ध़॒ (कोमल)	१०—ग॒ (कोमल)	२२—गं॒ (कोमल)
४—ध़ (तीव्र)	११—ग (तीव्र)	२३—गं (तीव्र)
५—नी़॒ (कोमल)	१२—म (शुद्ध)	२४—मं (शुद्ध यानी कोमल)
६—नी़ (तीव्र)	१३—म॑ (तीव्र)	
७—स (अचल)	१४—प (अचल)	
	१५—ध॒ (कोमल)	
	१६—ध (तीव्र)	
	१७—नी॒ (कोमल)	
	१८—नी (तीव्र)	
	१९—सं (अचल)	

बोल निकालने की विधि

दांये हाथ की पहली उँगली और बीच की उंगली में मिज़राब आड़ी पहन कर बाज के तार 'म' पर अन्य सब तारों को स्पर्श करते हुए अपनी ओर ज़रब लगाने से "डा" और इसका उल्टा करने से 'णा' निकलेगा, परन्तु यह बोल उसी हाथ की चिटली में वांक डालकर 'डा' निकालने के बाद ही चिकारियों पर निकलेगा।

डिणा—यह बोल 'डा' और 'णा' को मिलाकर बजाने से उसके आधे समय में निकलेगा।

बजाने की विधि

वीणा बजाने वाले को चाहिए कि औंधे घुटने करके (उकड़ू) बैठे। बांये कांधे पर वीणा रक्खे (कोई कोई इसे अपने सामने रखकर भी बजाते हैं) फिर प्रथम

धीरे-धीरे सारेगम आदि सारों पर वाया हाथ चलाने का अभ्यास करे। जव भली-प्रकार हाथ जम जावे तव गत निकालने की कोशिश करें।

नोट—प्राचीन समय में वीणा के साथ २ तम्बूरे वाले और १ पखावजी सङ्गत में हुआ करते थे, परन्तु अव जमाना नया है—नये-नये साज हैं अत. मन-मानी सङ्गत होती है। अव आगे वीणा की एक गत "गुजरी टोड़ी" अभ्यास के लिये दी जाती है। इस पर कुछ दिन परिश्रम करके हाथ तैयार हो जावेगा, वाद में फिर और-और गतें भी आसानी से निकल सकगी।

"गूजरी टोड़ी ध्यान"

मलयागिर वृक्ष के कोमल पत्तों की शैया पै वैठी हुई १६ वर्ष की अवस्था, सुन्दर केश हैं जिसके। वीणा हाथ में लिये, श्रुति और स्वर इनके विभाग को दरशाती हुई—ऐसी गूजरी रागनी है।

उत्पति-

रामकली टोडी संयुक्ता वराटी मिश्रिता पुनः।
गुज्जरी जायते विद्वान अथयामे प्रगीयते ॥

अर्थ—रामकली टोड़ी संयुक्त वराटी मिली हुई गूजरी होती है—इसे विद्वान पहले पहर में गाते हैं।

"म तीव्र" **गत गूजरी टोड़ी** कोमल स्वर रे ग ध

ताल

+				२				०				३			
											डिए	डा	डिए	डा	णा
											नन	ध	पप	म	ग
											१८,१८	१५	१४,१४	१३	१०
डा	डा	णा	डिए	टा	णा	डा	डिए	डा	डा	णा	डिए	डा	डिए	डा	णा
प	प	प	पप	म	ग	म	पप	म	ग	र	गग	र	सस	ध	प
१४	१५	१४	१४,१४	१३	१०	१३	१४,१४	१२	१०	८	१०,१०	८	७,७	३	२

डा डिण डा णा	डा डिण डा णा	डा डा णा	
म ध़ध़ ऩ र	ग मम प प	म ध ध	
१ ३,३ ६ ८	१० १३,१३ १४ १४	१३ १५ १५	

अन्तरा (४ मात्रा से)

डिण	डा डिण डा णा	डा डिण डा णा	डा डिण डा णा
म म	प नन रं गं	गं गंगं रं सं	न नन ध प
१३,१३	१४ १८,१८ २० २२	२२ २२,२२ २० १९	१८ १८,१८ १५ १४

डा डा णा डिण	डा डिण डा णा	डा डा णा	
म ध ध नन	ध पप म ग	म प प	
१३ १५ १५ १८,१८	१५ १४,१४ १३ १०	१३ १४ १४	

चिन्ह परिचय अन्य स्वर-लिपियों की तरह समझिये। ऊपर वींणा के बोल हैं, उनके नीचे सरगम, और सरगमों के नीचे वीणा की सारों (परदों) के नम्बर हैं।

अब ओम नाम मुझे गाने दे

अब ओम् नाम मुझे गाने दे।
मैं बहुत रह लिया दुनियां में, अब दुनिया से मुझे जाने दे।
मुझे ओम् से प्रीत अटूट लगी, मुझे ओम् का जीवन जीने दे॥
मन भंवरा मेरा काला है, मुझे ओम् सुमन रस पीने दे।
इस ओम् सुमन का देश मुझे पीकर पी के घर जाने दे॥
अब ओम् नाम.........

दोहाः—मैं दुखी तू भी दुखी, दुखिया सब संसार।
देश सुखी वह जीव है, पाया जिस करतार॥
है ऊब गया जग जीवन से, मुझे ओम् से दिल बहलाने दे।
अब ओम नाम.........   (रकार्ड गीत)

ग्रामोफोन रेकार्डों के कुछ गीत

(१)
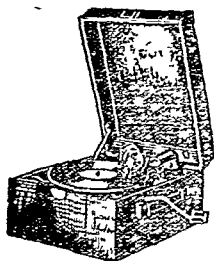
अबतो जागो भारत वालो !
जाग उठे हैं दुनिया वाले मतवालों ने होश सम्भाले ।
जगके हैं सब रङ्ग निराले, तुमभी उठो ! कुछ देखो भालो॥
—अबतो जागो............ ॥
बैर दुई के भाव मिटाकर, फूट रोग को दूर हटाकर ।
अपने मनको दीप बनाकर, इसमें प्रेम की ज्योति जगालो।
—अबतो जागो ....॥
कब से कष्ट सहे जाती है, भारतमाता दुखपाती है ।
नयनों से जल बरसाती है, भारत माकी लाज बचाओ ॥
—अबतो जागो... ...॥

(२)

सुन्दर रूप दिखाओ प्रीतम, सामने मेरे आओ प्रीतम
मिलना जुलना जोड़ दिया क्यूं प्रेम का नाता तोड़ दिया क्यूं
किसने सिखाई निरदई बातें, सुन जाओ मेरी दो बातें,
अब नाहीं तड़पाओ प्रीतम, सुन्दर...... ...
तुम जो आते मनमे बिठाता, प्रेम के मीठे गीत सुनाता
जो बीती थी सब बतलाता, खुद भी रोता तुम्हें रुलाता,
प्रेम कथा सुन जाओ प्रीतम, सुन्दर......

(३)

अखियन मे आय बसो नन्द के दुलारे,
मोहे मुनी जन समाज, राखो ब्रज राज लाज । -
चरण कमल दरश देदो, दुखियन के प्रभु प्यारे ॥ अखियन० ॥
आन फंसी जग जीवन नय्या, तुम बिन माधो कौन खेवैय्या ।
कासे कहूँ अब कौन सुने प्रभु, भगतन के प्रभु टेक रखैय्या ॥
जन्म जन्म की आशा पूरी, आये गये घनश्याम,
अमर प्रेम की ज्योति जगी अब बोलो राधेश्याम ।
बोलो राधेश्याम ! बोलो राधेश्याम ॥

ग्रा मो फो न सं गी त

फिल्म-गीत

(श्री० रामकृष्ण शर्मा, बी० ए०, बी० काम०)

आप लोग रोज़ फ़िल्मों में नये-नये गाने, नयी तरज़ें सुना करते हैं। कभी आपने यह भी सोचा है; फ़िल्म-गीत है क्या वस्तु? उसमें काव्य और सङ्गीत का क्या महत्व है? रूप-रेखा कैसी होती है? सैधांतिक आधार क्या है। भारतीय और पाश्चात्य-सङ्गीत में कैसा अन्तर है? फिर भी फ़िल्म से उनका क्या सम्बन्ध है? इत्यादि, अनेकों प्रश्नों का यहां स्पष्टी-करण किया गया है।

लेखकः—

काव्य की अनेक परिभाषायें होती आई हैं, परन्तु वास्तव में शब्द-उच्चारण के उसी विशेष प्रभाव को काव्य कहते हैं। जिसके कारण मनुष्य किसी भाव में लीन हो जाता है, उसकी विचार-प्रेरणा जाग्रत हो जाती है, वह किसी रस का आनन्द लेने लगता है। या यों कहिये, कि मधुर-ललित शब्द प्रबन्ध में भाव और रस के सम्मिश्रण को ही काव्य कहते हैं।

रति, हँसी, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य और निर्वेद-नौ भाव हैं। इन्हीं को स्थाई भाव भी कहते हैं, जो क्षणिक ही नहीं, वरन् सदा रसों में स्थिर रहते हैं। इन ६ भावों से ६-रस उत्पन्न होते हैं—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। काव्य शब्द-व्यवहार से हमारा मन हर्ष, शोक, हास्य या विस्मय का अलौकिक आनन्द लेने लगता है। उसी अलौकिक आनन्द को हम रस कहते हैं। भाव के कार्य-रूप को अनुभाव कहते हैं। जैसे-एक कामिनी के नयन-वाण से रति-भाव का उदय होता है, और उसी रति-भाव में रस होता है शृङ्गार। भाव, अनुभाव, विभाव आलम्बन, उद्दीपन,-अन्य अनेक रूप-रूपान्तर हैं परन्तु इतने विस्तार में न जाकर भी हमें स्मरण रखना चाहिये काव्य में भाव और रस के साथ ही गुण की भी आवश्यकता है। हमारे शब्द-शब्दार्थ में गुण-युक्त होने चाहिये। गुण तीन प्रकार के हैं—माधुर्य, ओज, प्रसाद। शब्द-योजना तथा समास मनोहर हो ताकि सुनते ही अर्थ समझ में आ जाय। यह है प्रसाद-गुण। रससंपोषण के लिये छंद, प्रधानता विशेष महत्व की बात है। मेरे विचार से काव्य में शब्द

व्यवस्था को ही छुद कहना चाहिये। और इन्हीं छन्दों के अनुसार रस का स्थान बदलता रहता है, या यों कि अमुक रस की रक्षा के अमुक रूप से ही शब्द व्यवस्था अर्थात् छन्द रचना करनी पड़ेगी। जैसे द्रुत-विलम्बित, शिखरिणी और मालिनी में शृङ्गार, शान्त और करुण-रस अधिक प्रिय जँचते हैं। उसी प्रकार सवैया में वीर-रस का भास हो जाता है छन्द से ही नहीं, रस की शोभा रस से भी बढ़ती है जैसे-शृङ्गार की हास्य से, परन्तु शृङ्गार में वीभत्स का मिश्रण करने से सर्वनाश हो जायगा।

कवि भाव, अनुभाव, रस तथा गुण को छुन्द बद्ध करके हृदय-तन्त्री को बजा देता है। एक चित्रकार के समान ब्रुश और रङ्ग के स्थान में लेखिनी और शब्द-व्यवस्था द्वारा घटना, भाव, विचार तथा वस्तु का साक्षात् कराता है। परन्तु कार्य का महत्व चित्रकार से अधिक है। वह चित्रकार के बाह्य-प्रदर्शन से आगे बढ़ कर अन्तर-झलक का दृश्य रचता है।—

उनके देखके से आजाती है मुंह पर रौनक़।
वे समझते हैं बीमार का हाल अच्छा है॥

—गालिब

शाम से कुछ बुझा सर रहता है।
दिल हुआ है चिराग मुफ़लिस का॥

—मीर

एक चतुर चित्रकार भी इन भावों की सापेक्षता खड़ी कर सकता है, परन्तु उनमें भावोत्पादक क्रिया तरंग का अभाव ही रहेगा।

(२)

भाव, रस तथा गुण युक्त सुकाव्य छन्द की प्रवाह धारा को स्वर, लय, ताल, सम के अनुसार नियम बद्ध करके कर्ण प्रिय शब्द सरगम में ढालने से गीत का रूप स्थिर होता है। गीत अर्थात् गायन मे वाद्य-समता का मिश्रण होने से सङ्गीत का स्वरूप बनता है।

जिस प्रकार काव्य की शब्द व्यवस्था छन्दो पर निर्धारित है उसी प्रकार सङ्गीत का सुनियमन राग-रागिनियों द्वारा होता है। ज्यों-ज्यों हमारा ज्ञान परिष्कृत होता गया हमने राग-रागिनियो मे काल और स्वभाव (Time and Temperament) का मिश्रण करके एक कला पूर्ण शुद्ध व्यवस्था स्थापित की। यों तो राग और रागिनी का अन्तर बताना कठिन है, पर इतना कहने मे हानि नहीं कि राग मे कुछ ओज (गठापन) और रागिनी में सौकुमार्य होता है।

भारतीय संगीत का राग-नियमन लक्षणों (Technique) से परिपूर्ण है, इसलिये कुछ कठोर है, पर इससे हमारी सङ्गीत-कला नीरस होगई हो, यह बात नहीं। भारतीय सङ्गीत में स्वच्छन्दता को स्थान नहीं—सब को उसी निश्चित विधान से ही होकर चलना पड़ता है। पाश्चात्य संगीत के भक्त, कुछ लोग हमारे संगीत में समता का अभाव देखने लगे हैं, परन्तु यह उनकी अनभिज्ञता है। भारतीय संगीत का स्थल बड़ा है। यहां विभिन्न शब्दों में समता स्थिर करने का उपाय नहीं है, बल्कि एक ही रचना के प्रवाह विभिन्नता में समता का विधान है। इसी सिद्धान्त पर हमारा लालित्य स्तम्भ अचल बना हुआ है।

अस्तु, न तो हमें भारतीय संगीत का शास्त्रीय विवेचन करना है, और न अभी यहां भारतीय और पाश्चात्य पद्धति का वादा विवाद उठाना चाहतेहैं। हमारा मतलब है लोगों का ध्यान, राग-रागिनियों के महत्व की ओर आकर्षित करना।

(२)

भैरव, श्री, मालकौस, दीपक, हिंडोल, मेघ,—६ राग प्रसिद्ध हैं, जिनमें से भैरव, श्री, मालकौस साल भर गाये जाते हैं। भैरव प्रातः, श्री सायंकाल के निकट और मालकौस रात्रि समय का राग है। दीपक ग्रीष्म काल में, हिंडोल शीत काल में, और मेघ वर्षा में गाया जाता है। मालकौस बड़ा मस्त राग है, प्रकृति गम्भीर और मधुर है। विस्तृत और गम्भीर होने के कारण अलाप के लिये विशेष रूप से उपयुक्त हैं। स्वर का ज्ञान होने से सरलतापूर्वक गाया जा सकता है।

यों तो सभी राग सभी समय गाये जा सकते हैं, परन्तु अपने समय में गाये जाने से सहायक प्रेरणा होती है। राग के पश्चात अनेक राग पुत्र और रागिनियां हैं, जिनका विधान सूर्य के अनुसार होता है।

राग-रागिनियों का सम्बन्ध समय और काल से ही नहीं, मानव प्रकृति और स्वभाव से भी हैं। कालङ्गड़ा और जोगिया को अतायी लोग अधिक गाते बजाते और पसन्द करते हैं। कफ़, बात रोगों के लिए सारङ्गों का, उन्माद के लिए टोड़ी प्रभृत का, पित्त प्रधान वालों के लिये देशी-दरबारी का गाना बजाना हितकारी है। इसके अति-रिक्त राग-रागिनियों का सम्बन्ध देश-विदेश से भी है। जैसे आसा का पञ्जाबी वेश्याओं में बड़ा महत्व है, पूर्व में नहीं। रागनियों का नाम सिंधी, कालंगड़ा, पूर्वी—इस मत का पोषक है। राग-रागनियों का सम्बन्ध जाति और समाज से भी होता है, स्थिति और परिस्थिति से भी इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे बच्चा पैदा होने पर सोहर या बधाई, पूजा अर्चना के अन्त में 'शान्ति पाठ' (या आर्ती) की प्रथा है। सरिता या सरोवर तट पर श्री राग का चमत्कार है, चांदनी में केदार गाया जाता है, रिम-झिम-रिम-झिम वर्षा में सावनी एक मस्त आनन्द देती है।

(४)

राग-रागनियों के लक्षित अन्तर भेद की ओर सकेत करके हम स्वर की ओर ध्यान देना चाहते हैं। वास्तव में स्वर के ज्ञान-विज्ञान से ही राग का रूप बनता है। कान में उंगली डालने से साथ-साथ शब्द होता है उसे अनाहत नाद कहते है। इसी प्रकार अन्य अनाहत नाद हैं, जो न तो कर्ण प्रिय होते हैं, न उनका कोई आनन्द प्रभाव ही होता है। सितार और वीणा, तबला और डफ पर चोट करने से जो शब्द होता है उसे आहतनाद कहते हैं। कण्ठ प्रेरणा से भी आहतनाद होता है। इसी को स्वर कहते हैं। स्वर में कण्ठ, शरीर और हृदय-तीन प्रेरणाओं का प्राधान्य है और इसी के अनुसार तीन स्वर सप्तक स्थिर हुए हैं, हृदय में मन्दनाद (प्रथम सप्तक) कण्ठ मे मध्य नाद (द्वितीय सप्तक) और शरीर में तार नाद (तृतीय सप्तक) का सम्बन्ध है। इन सप्तकों के भेद को श्रुति कहते हैं। श्रुतियां पांच है, दीप्ता, आयता, करुणा मृदु, और मध्या। दीप्ता के प्रभाव से मन दीप्त होता है। आयता से आयत अर्थात विस्तृत, करुणा-से-करुणा प्रभाव पड़ता है।

खटाई के आधिक्य से कण्ठ बिगड़ता है, मुग्दर फिरानेवाले का हाथ वादन यन्त्रों के योग्य नहीं रहता, मलाई से कण्ठ सुधरता है, उसी प्रकार तेल लगाकर गरम जल से स्नान करने वाला मनुष्य कोमल और लचीला रहता है। ऐसा सावधान मनुष्य शुद्ध स्वरोच्चारण करता है, जिसे वर्ण कहते हैं। वर्ण चार हैं। स्थायी, आरोही, अवरोही, और संचारी। एक स्वर के निरन्तर अनेक बार प्रयोग को स्थायी कहते हैं, जैसे 'सा-सा-सा'। 'सा, रे, ग, म, प, ध, नी' को आरोही और नी, ध, प, म, ग, रे, सा' को अवरोही कहते हैं। यदि इन तीनों का मिश्रण हो तो उसे सचारी कहते है। 'फिकरे' को अलङ्कार कहते हैं, वादक यन्त्रों के बोल को पद कहते हैं। वर्ण अलङ्कार, पद तथा लय से युक्त गान किया को गीत कहते हैं।

(५)

यहाँ विदेशी यन्त्रों का भी थोड़ा वर्णन कर देना चाहिये। हारमोनियम आदि विदेशी यन्त्रों में लचक, मींड, या सूत न होने से हमारी गम्भीर राग-रागिनिया स्पष्ट नहीं होती। वीणा सबसे प्राचीन देशी वाद्य है, इसी के आधार पर सितार इत्यादि बने। फिर और सारङ्गी का आविष्कार हुआ। तम्बूरा भी बहुत प्राचीन वाद्य है। वशी भी प्राचीन है, तो भी शहनाई कम प्रभाव-शाली नहीं। मृदङ्ग सब से प्राचीन समझा जाता है। परन्तु इतिहास प्रेरणा के आधार पर ढप और नगाड़ा बहुत प्राचीन मालूम पड़ते हैं। सितार का सम्बन्ध मुसलमानों से मालूम होता है। वीणा में ताल का काम न होने से सितार वीणा से भी कठिन है। प्राचीन काल में वीणा के साथ मृदङ्ग भी बजाया जाता था। इसकी बनावट को ध्यान में रखने से वीणा शरद या वर्षा

ऋतु का वाद्य समझा जाता है। उसी प्रकार सितार शीत काल का वाद्य है। परन्तु तबला, ढप, या मृदङ्ग आदि वर्षा के प्रतिकूल समझे जाते हैं।

(६)

इस संक्षिप्त वर्णन से मेरा यही अभिप्राय है कि फिल्म में संगीत का समावेश हो जाने से हम बड़ी गूढ़ अवस्था को प्राप्त होगये हैं। गीत, ज्ञान न होते हुए भी वाद्यों के इतिहास और परम्परा से अनभिज्ञ होते हुए भी फिल्म कम्पनियों का 'मास्टर' दल जनता को धोखा ही नहीं देरहे हैं, सारे संगीत ज्ञान को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं। होना तो चाहिये था कि संगीत के इस उपयोग तथा आधिक्य के कारण हमारा ज्ञान और भी विस्तृत और परिष्कृत होता न कि लोगों को संगीत का भ्रम दिखा कर पैसा कमाने के लिये ऐसी लाक्षणिक तथा विशुद्ध कला को गला फाड़ मूर्खों के हाथ में सौंप दिया जाता, और उन्हें जबरदस्ती 'मास्टर' बता कर हमें खुले बाजार धोखा दिया जाता। अगले अध्यायों में हमने संक्षेप रीति से यही बताने का प्रयत्न किया है कि भारतीय-संगीत की ललित पवित्रता को अचल बनाये रखने के लिये जरूरी अध्ययन और अध्यवसाय से काम लेना होगा। और संगीत का वही अधिकारी है, जो अध्ययन अध्यवसाय द्वारा गीत, ज्ञान और संगीत लालित्य को समझ गया है ताकि अपने मधुर प्रदर्शन से लोगों को सच्चा आनन्द प्रदान कर सकें।

दूसरा अभिप्राय यह भी देखना है कि भारतीय सङ्गीत विदेशों के केवल शब्द साम्य से बहुत आगे परम सूक्ष्म लालित्य पर निर्भर है। इसलिये हम जिसे भारतीय सङ्गीत बनाकर जनता को पेश करते हैं उसमें भारतीय विधान, लक्षण तथा दोष गुण का ही ध्यान होना चाहिये। वरना सङ्गीत के नाम पर देशी--विदेशी के काम चलाऊ मिश्रण से वही होगा, जैसे गदहे घोड़े से खच्चर बनता है, या सम्भवतः सारा तत्व ही नाश हो जाय और कुछ भी न पैदा हो।

(७)

अब हम जरा और आगे आते हैं। इसमें तो कोई शङ्का नहीं कि प्राचीन समय में भारतीय सङ्गीत ने अच्छी उन्नति की थी। बीच में कुछ घटती चली थी, परन्तु मुगलों के समय इसका फिर बोल बाला हुआ। वहीं से इसकी शुद्ध वैदिक ध्वनि में यवन प्रभाव का समावेश हुआ। ग़ज़ल कव्वाली इत्यादि गानों में सितार शहनाई का आगमन हुआ। सवाक फिल्मों के आगमन से सङ्गीत का समस्त संसार में प्राबल्य प्रारम्भ हुआ। भारत ने भी क़दम बढ़ाया। नित्य नया ढङ्ग, नया रंग नजर आने लगा। हम अपनी क्षीणकाय दशा के कारण या अन्य संघर्षात्मक कारणोंवश शुद्ध संगीत का बोलपट में समुचित प्रयोग नहीं कर सके हैं और नहीं संगीत-विशारदों ने इस ओर ध्यान दिया है। परन्तु सुनने वाले तो तथ्य की खोज करने ही लगे हैं। (क्रमशः)

(आगामी अंक में देखिये)

———

गत-सितार

स्वरलिपिकार—
श्री 'मल्लजी' भंडारीजी
कान्तिपुर, नैपाल।

राग मालकोष (त्रिताल-द्रुतलय)

गत नं० २
राग नं० २

स्थायी

२	०	१	+
ग ग	ध ध	ग	
मग मग म ग	स न नध नध	न- नस -स म	मग - - स
दाऽ दिर दा रा	दा रा दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दा	दाऽ ऽ ऽ दा
ग		ग ग	
-स म मग -	- न -न स	मग मग म ध	न सं नन सस
ऽर दा दाऽ ऽ	ऽ दा ऽर दा	दाऽ दिर दा रा	दा रा दिर दिर
		ग ग	ग
न- संध -ध न	संगं गं सं न	ध म मग मग	मग गस -स नंस
दाऽ रदा ऽर दा	दाऽ रा दा रा	दा रा दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दाऽ

अन्तरा

ग ग		गं	
मग मग म- ध	-ध न सं स	सं - मं -	- - सं -
दाऽ दिर दाऽ रा	ऽर दा दा रा	दा ऽ रा ऽ	ऽ ऽ दा ऽ
ग			
मं - - गं	-ग सं न सं	ध नन ससं नन	ध- धम -म ग
ग ऽ ऽ दा	ऽर दा दा रा	दा दिर दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दा

			ग
सं– न– – सं	न ध –ध न	ध– म– – ध	म म –ग ग
दाऽ राऽ ऽ दा	रा दा ऽर दा	दाऽ राऽ ऽ दा	रा दा ऽर दा

तोड़ा—१ सम से

३	०	१	+
ग ग	ध ध	ग	
मग मग म ग	स न नध नध	न– नस –स म	सस सस मम गग
दाऽ दिर दा रा	दा रा दिर दिर	दाऽ ऽदा ऽऽ दा	दिर दिर दिर दिर
गग गग धध मम	मम मम नन धध	धध धध संसं नन	गं सं –सं न
दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दा दा ऽर दा
			ग
ध – न ध	–ध म ग –	ध न –न स	मग – – स
दा ऽ दा दा	ऽर दा दा ऽ	दा दा ऽर दा	दाऽ ऽ ऽ दा

तोड़ा—२ तीसरी से

३	०	।	+
			ग
मम धध नन सस	मम गग सस मम	गग सस मम गग	मग – – स
दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दाऽ ऽ ऽ दा

तोड़ा—३ खाली से

३	०	१	+
ग			
मग मग म ग	सस धध नन सस	मम गग सस धध	मम गग नन धध
दाऽ दिर दा रा	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर

मम संस नन धध	नन धध मम धध	मम गग मम गग	सस गग सस नन
दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर

तोड़ा–४ पहिली से

३	०	१	+
ग ग	ध ध		
मग मग म ग	स न नध नध	नन सस मम मम	गग सस मम गग
दाऽ दिर दा रा	दा रा दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर
मम धध नन सस	मंमं गंगं संस नन	सं – संसं नन	धध नन म –
दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दा ऽ दिर दिर	दिर दिर दा ऽ
			न
धध मम गग मम	मम धध नन धध	नन सस नन सस	मग – – स
दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दिर दिर दिर दिर	दाऽ ऽ ऽ दा

राग विवरण–ठाट–भैरवी, ग ध न कोमल, जाति–औढ़व र प वर्जित, वादी–मध्यम, सवादी–षरज, समय–रात्रि का दूसरा प्रहर।

आरोह—{ स म, ग म, म, ध, न, स ।

अवरोह—{ स, न, ध, न, ध, म, ग, म, स ।

———o———

१—फिल्म "यन्ग्रीला" (बलदेव और कुन्ती)

धन्य-धन्य हे जगतपती है धन्य तेरी माया।

बीत गये दिन दुख के साजन सुख संदेशा लाया।
सुख पायेंगे अब उतना ही जितना कष्ट उठाया॥
रूप प्रेम पर मोहित होकर मधुर स्वरों में गाया।
प्रेम ने लेकर हाथ में वीणा सुख का राग सुनाया॥
फूल-फूल ने कोयल का मन खिल-खिलकर बहलाया।
कली-कली ने आज भ्रमर को हंस-हंस गले लगाया॥

२—फिल्म "धरतीमाता" (सहगल)

अब मैं काह करूं कित जाऊं?

छूट गया सब साथ सहारा, अपने भी कर गये किनारा।
एक बाजी में सब कुछ हारा, आशा हारी हिम्मत हारी॥
अब क्या दाव लगाऊं? अब मैं ·······॥
जो पौधा सींचा मुरझाया, टूट गया जो महल बनाया।
बुझगया जो भी दिया जलाया मन अंधियारा, जग अंधियारा॥
जोत कहां से पाऊं? अब मैं ···········॥

३—फिल्म "वचन" (देविकारानी)

आरे पंछी प्यारे पंछी, आ···आ···आ···!
उड़जा अपने देश पंछी, उड़जा अपने देश।

खुली हवा का उड़ने वाला, दूर दिशा का रहने वाला।
आन पड़ा परदेश पंछी, उड़जा अपने देश॥
धीरे-धीरे उड़कर आना, नहीं-कहीं पर नहीं थकाना।
मां को अपनी भूल न जाना, कभी-कभी यहां उड़कर आना॥
जब तक जीवन शेष पंछी, उड़जा अपने देश॥

४—फिल्म "तूफ़ानी टोली"

मूरख क्यों करता मनमानी।
छिपी न रहेगी जगदीश्वर से तेरी पाप कहानी॥ मूरख०॥
नज़र चुराये जग से पापी, चोर चुराये चोरी।
आंख मिचौनी खेले मनसे कितनी है कमजोरी॥
आंखों वाला देख रहा है अन्धे की नादानी॥ मूरख०॥

पनघट पै कन्हैया आता है !

(स्वरलिपिकार—सेठ टीकमदास जी तापड़िया)

—※—
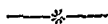
फिल्म गीत "विद्यापति"] [ताल कहरवा

हरी चरनन मे सफल होत सब पूजा ॥
जब कोई मुसाफिर अँधियारे में, अपनी राह खोजाता है ।
फिर मन मोहन आ हाथ पकड़ कर, उसको राह दिखाता है ॥
"तुम रुक क्यो गये बाबा ?"
"गाऊं, क्या गाऊं बेटा ?"
"वही, पनघट पै कन्हैया • • •••••••"
"ओ ! अच्छा"
पनघट पै कन्हैया आता है, आकर धूम मचाता है ॥
राधा से रास रचाता है, सखियों को नाच नचाता है ।
वो बासुरिया ले आता है, और मीठी तान सुनाता है ॥ पन० ॥
मोहन को माखन भाता है, वो माखन खूब चुराता है ।
खाता है और खवाता है, सखियो को बहुत सताता है ॥ पन० ॥

+				०				+				०			
														ह	रि
														स	सा
च	र	न	न	मे	ऽ	ऽ	ऽ	स	फ	ल	हो	ऽ	त	स	व
रे	ग	म	प	प	–	–	–	म	म	ध	प	–	म	ग	म
पू	ऽ	जा	ऽ	होऽ	ऽऽ	ह	री	च	र	न	न	में	ऽ	ऽ	ऽ
ग	ग	रे	–	गम	गरे	सा	सा	रे	ग	म	प	प	–	–	–

स	फ	ल	हो	ऽ	त	स	व	पू	ऽ	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ज	व
म	म	ध	प	–	म	ग	म	ग	म	रे	–	–	ध	ध	ध
ऽ	को	ई	मु	सा	ऽ	फि	र	ऽ	अधि	या	ऽ	रे	ऽ	में	ऽ
–	ध	ध	ध	ध	–	ध	ध	–	धध	ध	नी	ध	नी	प	–
अ	प	नी	रा	ऽ	ह	खो	ऽ	जा	ऽ	ताऽ	ऽ	हैऽ	ऽऽ	ज	व
प	प	ध	प	म	म	म	म	प	–	धनी	सां	नीसां	नीसां	नी	ध
ऽ	को	ई	मु	सा	ऽ	फि	र	ऽ	अधि	या	ऽ	रे	ऽ	में	ऽ
–	ध	ध	ध	ध	–	ध	ध	–	धध	ध	नी	ध	नी	प	–
अ	प	नी	रा	ऽ	ह	खो	ऽ	जा	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	फि	र
प	प	ध	प	म	म	म	–	ग	ऽ	ग	म	रे	–	सा	सा
म	न	मो	ऽ	ह	न	आ	ऽ	ऽ	हाऽ	थ	प	क	ड़	क	र
सा	रे	रे	–	रे	रे	रे	–	–	रेग	म	म	ग	ग	र	र
ऽ	उ	स	को	रा	ऽ	ह	दि	खा	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	प	न
–	ग	म	ध	प	–	प	प	म	–	ग	–	रे	–	स	स
घ	ट	पै	क	न्है	ऽ	या	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ता	है	ऽ	ऽ	ऽ
रे	रे	म	म	प	–	ध	–	–	ध	–	रें	सां	–	–	–

आ	ऽ	क	र	धू	ऽ	म	म	ऽ	चा	ऽ	ता	है	ऽ	प	न
ध	–	ध	प	म	प	ध	ध	–	म	–	म	रे	सा	सा	सा
घ	ट	पै	क	ऱ्है	ऽ	या	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ता	है	ऽ	रा	ऽ
रे	रे	म	म	प	–	ध	–	–	ध	–	रें	सा	–	ध	नी
धा	ऽ	से	ऽ	रा	ऽ	स	र	चा	ऽ	ऽ	ता	है	ऽ	स	री
ध	–	ध	–	ध	–	ध	ध	ध	प	म	ध	प	–	सा	सा
यों	ऽ	को	ऽ	ऽ	ऽ	स	री	यों	ऽ	को	ऽ	ना	ऽ	च	न
रे	–	म	–	–	–	सा	सा	रे	–	म	–	प	–	प	ध
चा	ऽ	ऽ	ता	है	ऽ	चो	ऽ	या	ऽ	सु	रि	या	ऽ	ले	ऽ
ध	प	म	ध	प	–	प	–	ग	–	प	प	प	–	ध	–
आ	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	औ	र	मी	ऽ	ठी	ऽ	ता	ऽ	न	सु
नी	सा	नी	ध	प	–	सा	सा	नी	सा	नी	सा	नी	ध	ध	प
ना	ऽ	ता	ऽऽ	है	ऽ	प	न								
ध	प	नी	धनी	प	–										
						मो	ऽ	ह	न	को	ऽ	मा	ऽ	प	न
						सा	–	नी	सा	नी	सा	नी	ध	ध	प

भा	ऽ	ऽ	ता	है	ऽ	वो	ऽ	मा	ऽ	ख	न	खू	ऽ	ब	सु
ध	नी	सां	सां	सां	–	प	–	ग	प	प	प	प	–	प	ध
रा	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	खा	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	औ	ऽ	र	गं
नी	सां	नी	ध	प	–	सा	–	सा	रे	रे	–	रे	–	रे	ग
बा	ऽ	ता	ऽ	हैऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	खा	ऽ	ता	ऽ	औ	ऽ	र	गं
ग	प	प	प	पध	मप	गम	रेग	सा	रे	रे	–	रे	ऽ	रे	ग
वा	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	स	खी	यों	ऽऽ	को	ऽ	ब	हु	त	स
ग	प	प	–	प	–	प	प	ध	नीसां	नी	सां	नी	ध	ध	प
ता	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	प	न								
म	–	म	ध	प	–	स	स								

फिल्मगीत "स्नेहलता"

संभल कर रख कदम कांटे बिछे हैं प्रेम के बनमें,
न कोई यार पहुँचा है, समझले सोचले मनमें ।
अरे ओ प्रेम के प्यासे, तुझे धोका है मृगजल का,
समझता जिसको तू अमृत, वह प्याला है हलाहल का ।
न जिसकी है दवा ऐसी; जलन होगी तेरे मन में । संभल···॥
न बैठेगा कभी सुख से, न तुझको नींद आयेगी,
यह ज्वाला है भयंकर जो तुझे निशदिन जलायेगी,
बहेगा नीर नयनों से विकल होगा तू छन छन में । संभल···॥

संगीत बाल बोध

यह लेखमाला सङ्गीत के नवीन शिक्षार्थियों के लिये चालू की आरही है। आशा है इससे हमारे पाठक सङ्गीत लाभ उठायेंगे। सभी बातें सरलता पूर्वक समझाई हैं, फिर भी कुछ समझ में न आवे तो सङ्गीत कार्यालय हाथरस के पते से जवाबी पत्र भेजकर पूछ सकते हैं, यह लेखमाला क्रमश प्रतिमास छपती रहेगी, इस अङ्क से प्रथम पाठ आरम्भ किया जा रहा है। अपने बच्चों की सङ्गीत शिक्षा आज से ही आरम्भ करा दीजिये।

सङ्गीत का पहिला पाठ

शिष्य-गुरू जी आपने एक दिन कहा था कि हम तुम्हें गाना भी सिखाया करेंगे।

गुरू—हा बेटा! मैं आज से ही यह सिल सिला शुरू करना चाहता हूँ।

शिष्य-गुरुजी! क्या गाना सीखने से आजाता है?

गुरू—क्यों नहीं, जिस तरह से और विद्या सीखी जा सकती हैं, उसी प्रकार गाना भी सीखा जासकता है।

शिष्य-लेकिन गुरुजी! मैंने कुछ लोगों को यह कहते सुना है कि गाना बताने से नहीं आता, यह तो ईश्वरीय देन होती है।

गुरू—नहीं बेटा! यह बात नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि बाज़ लोग ऐसे ज़हीन होते हैं कि किसी दूसरे का गीत सुनकर उसे उसी तरह गाने लगते हैं, लेकिन ऐसे लोग अच्छे गवैये नहीं बन सकते क्यों कि उन्हें इस विद्या के नियमों से पूरी जानकारी नहीं होती।

शिष्य-वे नियम कौन-कौन से हैं, गुरूजी?

गुरू—गाना सीखने के लिये पहिली और जरूरी बात है, स्वर की पहिचान।

शिष्य-गुरू जी! स्वर किसे कहते हैं।

गुरू—जब कोई गवैया गाता है तो वह अपने गले से तरह-तरह की नीची, ऊंची आवाज़ें निकालता है। उनमें से प्रत्येक आवाज को एक स्वर कहते हैं।

शिष्य-अब मैं समझगया कि स्वर किसे कहते हैं।

गुरू—हा तो मैं कह रहा था कि गाना सीखने के लिये पहिली और जरूरी बात स्वर की पहचान है, जब तक यह न हो, कोई भी अच्छा गवैया नहीं बन सकता। क्यों कि कुछ खास-खास स्वरों के उलट फेर ही में सब गाने गाये जाते हैं। लेकिन कुछ लोग यह चाहते हैं कि इसके बिना ही काम चलजाय, ऐसे लोग कुछ गाना सीख भी लेते हैं, लेकिन उनका गाना ऊंचे दर्जे का नहीं होसकता। हा-अगर वे पहिले स्वर की पहिचान करलें तो अच्छे गवैये बन सकते हैं।

शिष्य-स्वर की पहिचान से आपका क्या मतलब है।

गुरू—बेटा ! गाने वाले को मालुम होना चाहिये कि अपने गीत में वह कौन-कौन से स्वर लगा रहा है।

शिष्य—तो गुरू जी उन स्वरों के नाम क्या हैं ?

गुरू—हां, देखो बेटा अब ध्यान से सुनो ! पहिले सात शुद्ध स्वरों को याद रखना चाहिये. जिनके नाम हैं, षरज, रिषभ, गन्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषाद। लेकिन गाने की आसानी के लिये इनके संक्षिप्त नाम स, रे, ग, म, प. ध, नि कायम कर दिये गये हैं, इन्हीं छोटे नामों से स्वरों को गाने का नाम सरगम है।

शिष्य-गुरूजी सरगम का अर्थ क्या है ?

गुरू—बेटा, "सरगम" शब्द वास्तव में सारेगम का संक्षिप्त या छोटा नाम है। अच्छा तुमको स्वरों के नाम तो मालुम हो चुके अब पहिचान के लिये इनको गले से अदा करना जरूरी है, लाओ वह हारमोनियम बाजा, और इस पर इनको निकालो ! देखो यह हारमोनियम है, इसमें तुम्हें ३ हिस्से जो दीख रहे हैं यह तीन सप्तक हैं, हर एक सप्तक में १२ स्वर हैं। इनमें से अगर पहिला पर्दा स मानाजाय तो पहिली सप्तक १२ तक होगी, वे स्वर इस प्रकार हैं। १ स, २ कोमल रे, ३ तीव्र रे, ४ कोमल ग, ५ तीव्र ग, ६ कोमल म, ७ तीव्र म ८ प, ९ कोमल ध, १० तीव्र ध, ११ कोमल न, १२ तीव्र न, यह एक सप्तक का हिसाब हुआ, इसी प्रकार तीन सप्तक हैं।
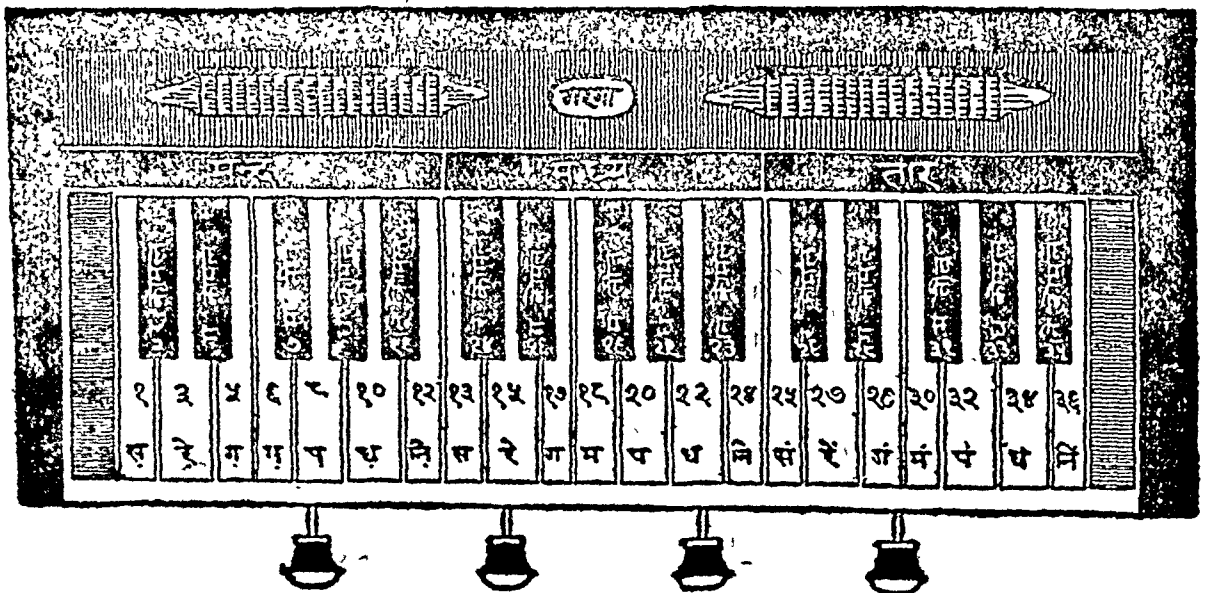
शिष्य— गुरूजी, यह कोमल और तीव्र का क्या झगड़ा है ?

गुरु—यह झगडा नहीं है बेटा ! बिना इसके काम नहीं चलता । पूरे एक सप्तक में स और प यह २ स्वर तो कायम कर दिये गये हैं, बाकी पाचो स्वर रे ग म ध नि के २-२ रूप कोमल (नीची आवाज) तीव्र (ऊची आवाज) कर दिये गये हैं, ऐसा करने से हर गाना इन पर निकालने में आसानी होती है। मानलो तुमने एक गीत गाया उस गीत मे ध स्वर का स्तैमाल भी तुम कर रहे हो, अब तुमने अपनी आवाज ध से कुछ नीची की तो वहा कोमल ध़ काम देगा और उससे भी नीचे 'प' स्वर आ जायगा। इस प्रकार कोमल और तीव्र स्वरो से मिल कर हो राग रागनिया बनी हैं।

शिष्य—और गुरूजी ! अगर हमें अपनी आवाज कोमल ध़ से कुछ नीची और प से कुछ ऊची करने की जरूरत पड़ी तो वह स्वर कहा से आवेगा ।

गुरू—शाबाश बेटे ! यह तुमने बड़े ऊचे दर्जे की बात पूछी है, कोमल ध और प के बीच में जो स्वर होना चाहिये वह हारमोनियम में नहीं होता, ऐसे स्वरो को श्रुतिया कहते हैं, और ये श्रुतिया सारङ्गी, बेला, सितार, इत्यादि वाद्यो में होती है। हा तो तुम पहिले शुद्ध स्वरो की सरगम निकालो, पीछे कोमल तीव्र मिलाकर सरगम बताई जायगी। और उसके बाद श्रुतियों के बारे मे तुम्हें बहुत सी बातें बताऊगा ।

शिष्य—तो बताइये गुरूजी ! शुद्ध सरगम कैसे निकालूं ?

गुरू—देखो, यह कोई जरूरी नहीं है कि तुम सबसे पहिले स्वर को ही सा, मान कर सरगम निकालो। मैं तुम्हें ऐसा सरल तरीका बताता हूँ कि बाजे में चाहे जिस स्वर को स, मान कर वहीं से सरगम निकालो। तुम यह बात याद करलो कि जिस स्वर को स माना जाय उससे तीसरे को रे, पाचवे को ग, छटे को म, आठवे को प, दसवे को ध बारहवे को नि और तेरहवा फिर दूसरी सप्तक का स, इसी क्रम से शुद्ध सरगम बड़ी आसानी से निकल आवेगी, देखो यह नकशा

इसमें जहां नम्बर १ है वहां से स शुरू करके सरगम निकाली गई है, इसमें २, ४, ७, ६, ११ जो खाली हैं वहां क्रम से (२) कोमल रे, (४) कोमल ग, (७) तीव्र म, (६) कोमल ध, (११) कोमल नि होने चाहिये। शुद्ध स्वर १, ३, ५, ६, ८, १०, १२ नम्बरों पर हैं, एक नम्बर के परदे को अंगुली से दबाओ और गले स स बोलो, फिर ३ पर अंगुली मारकर रे बोलो, इसी प्रकार ५ ग, ६ म, ८ प, १० ध, १२ नि, बोलो और खूब इनका अभ्यास करो, आगे दूसरे पाठ में इन्हीं स्वरों का उतार चढ़ाव तथा और कई तरह की सरगम बताऊंगा।

शिष्य-गुरूजी एक बात और बतादो, बाजे में यह ऊपर वाले परदे काले और नीचे वाले सफेद क्यों हैं?

गुरू—बेटा, काले और सफेद पर्दों में कुछ भेद नहीं है, सिवाय इसके कि उंगलियां आसानी से रखने और दौड़ाने में मदद मिले, इसलिये यह २ रङ्ग के परदे ऊंचे और नीचे बनाये जाते हैं। बहुत से लोग काले और सफेद परदों में ही कोमल और तीव्र का भेद मानते हैं यह उनकी भूल है। कोमल तीव्र का तो एक हिसाब अलग ही है जो तुम्हें मैंने अभी बताया है। अब जाओ और सरगम का अभ्यास करो, तुम बड़े ज़हीन लड़के हो मैं तुम्हें बहुत जल्दी गाना सिखादूंगा बशर्ते कि १ या २ घंटे रोज तुम सङ्गीत-अभ्यास किया करो।

—o—

विनय

देव तुम्हारा एक उपासक, अति अमोल रत्नों का हार।
तुम पर चढ़ा रहा है, देखो हाथ कहां मेरा संसार॥
मेरा जग में शेष रहा क्या, जब चरणों पर अर्पित प्राण।
और आज आया हूं तुम तक, मनमें धर पूजा का ध्यान॥
रत्न हार तो नश्वर जग का, उस पर मेरा क्या अधिकार।
नाथ दूसरे के धन का मैं, कैसे लूं तुम से पुरस्कार॥
इन व्याकुल नयनों में भगवन, मम केवल आंसू अवशेष।
इस लिये यह अश्रुहार, तुम पर मैं चढ़ा रहा प्राणेश॥

—श्री० छोटेलाल मित्तल।

पखावज में ध्रुपद के रेला-परन !

(ले०—श्री० भट्ट पद्मनाभ चक्रवर्ती "शेखर")

"धुरपद्" इस शब्द से प्राय सब ही महानुभाव परिचित हैं। यह वह शब्द है, जिसे कि तानसेन, वैजू वावरा, हद्दू खां, नत्थू खां इत्यादि कलाकारों ने अपने कण्ठ का हार बना लिया था।

जिस समय ध्रुपद् गाई जाती है उस समय वाद्य में भी ध्रुपद् का ठेका (अधिकतर चौताला ही में) लगाया जाता है। इस ध्रुपद वाद्य के भी उपर्युक्तानुसार कई एक आचार्य हो गये हैं उनमे कुदोसिंह का वाद्य, विख्यात एव लोक प्रिय था। कुदोसिंह केवल वाद्य शक्तिशाली ही नहीं थे, किन्तु वे दैवशक्तिशाली भी थे।

ध्रुपद को तबले पर भी बजाते हैं किन्तु नामान्तर से। इसके अतिरिक्त ध्रुपद के गायन में मुख्य पखावज का ही वाद्य माना गया है। पखावज में ध्रुपद का ठेका एव कुछ परन, रेला इत्यादि मैं यहा लिखता हूँ—

ठेका ध्रुपद (चौताल) मात्रा १२, ताल ४, काल २, भाग ६

दोहा ध्रुपद

मात्रा द्वादश भाग षट चार ताल द्वय काल।
आदि लघू द्वय, अन्त द्रुत, द्वय, धुरपद वह ताल॥

+		०		।		०		।		।	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	धा	दिं	ता	तिट	धाऽ	दिं	ता	तिट	कता	गदि	गिन

यह मूल ठेका है इसके बजाने के कई एक प्रकार हैं, उनमें से दो प्रकार यहा और लिखता हूँ—

प्रकार चौताल १

+		०		।		०		।		।	
धागे	तिट	किट	धागे	तिट	किट	धागे	दिन	नग	तिट	गदि	गिन

प्रकार २

+		०		|		०		|		|	
धिऽ	त्तधि	किट	तक	धीधी	किट	तक	धुम	किट	तक	गदि	गिन

परन न० १

×		०		|	
गदिगिन	धागेतिट	गदिगिन	नागेतिट	तकिटत	काकिट
०		|		|	
तिटकता	गदिदिन	तकिटत	गनधागे	तिटकता	गदिगिन

परन न० २

×		०		|	
धागेतिट	गदिगिन	नागेतिट	गदिगिन	धागेतिट	तकतक
०		|		|	
गदिगिन	धागेतिट	तकिटत	गनधागे	तिटकता	गदिगिन

परन न० ३

×		०		|	
धाकिट	तकिटत	काकिट	तक्का	थुंगा	तिटकता
०		|		|	
गदिगिन	धातिट	कतागदि	गिनधा	तिटकता	गदिगिन

परन न० ४

+		०		|	
धाग	धागे	दिंता	कध्धा	कध्धग	दिंता
०		|		|	
तिटकता	गदिगिन	धिकिटत	गनधागे	तिटकत	गदिगिन

डान्स-'खद्दर की टोपी'

(ताल कहरवा और दादरा)

(शब्दकार और स्वरकार—श्रीयुत आर० एस० "शातिर" एम० ए० एल० टी०)

यह डान्स बड़ी खूबसूरती के साथ काम में लाया जा सकता है। एक लड़का बाबू बने और छ या आठ लड़के उसके बच्चे बनें। आधे आधे बाबू के दोनों ओर सामने की तरफ खड़े हों, और इस गाने को गाते समय डान्स करते रहें तथा भावों को सांकेतिक रूप से भी प्रगट करते जाय, कभी लड़कों की नाचती हुई लाइन एक दूसरे के सामने को बढ़े और खूबसूरती से एक दूसरे को पार करके बाईं तरफ वाले सीधी तरफ वालों की जगह पहुंच जाये और सीधी तरफ वाले बाईं तरफ वालो की जगह आजायें और नाच जारी रखते हुए अपनी-अपनी जगह पर लौट जायें। नाच करते समय अपने दोनों हाथों की चुटकियों में टोपी हाथ में लिये रहें और उसको बहुत हल्के इशारे से इस प्रकार ऊपर नीचे करते रहें कि कोई भद्दापन न आने पाये। तथा किसी को भी कोई हरकत असभ्य मालूम न हो। कभी आपस में एक दूसरे का जोड़ा बांट लें और हाथ से हाथ पकड़कर व पैरों के पंजों से पंजे मिलाकर मुंह एक दूसरे के सामने रखते हुए चक्कर काटना शुरू करें। कभी बाबू को हाथ जोड़कर नम्र भाव से प्रार्थना करें। कभी कुर्ते, टोपी, इत्यादि की तरफ इशारा करें। कभी गांधी का चर्खा हाथ से चला कर दिखायें और पैर से घुंघरू की आवाज ताल पर बराबर निकालते रहे। गरज इसी तरह अपने डांस में अन्य प्रकार की हृदयाकर्षक बातें उत्पन्न करें। लेकिन इस बात का खयाल रहे कि जैसा मौका हो और जिस प्रकार की जनता हो, उसके सामने उसी प्रकारके मोशन्स करने चाहिये। खबरदार! सभ्यता हाथ से न जाने पाये। और कोई बात नुक्ताचीनी को पैदा न हो। हमने यह डान्स बड़ी सफलता के साथ सरकिल ऐज्यूकेशन वीक में (८ दिसम्बर १९३७ की रात्री को) लगभग छ हजार शिक्षित जनता के सामने कराया है। हमारा ऐसे डान्सों को प्रचलित करने का अभिप्राय ही यह है कि हमारे बच्चे सिनेमा और थ्येटर्स के नाचों के गन्दे २ मजमून भद्दे २ अश्लील इशारे बाजियों-बदन को थिरकाने मटकाने आदि-से बचें। जहाँ तक हो सके ड्रिल के घंटे में सीखी हुई वर्जिशें-('बदन के मुड़ने तुड़ने") डान्स में काम में लायी जायें जिससे कि दोनों कलाओं ड्रिल और सङ्गीत का मिलान हो।

लड़के:—बाबू मुझे खद्दर की टोपी मंगाय दो !

मंगायदो ! मंगायदो ! मंगायदो !! बाबू मुझे०......

टोपी मंगायदो ! धोती मंगायदो !

बाबू मुझे खद्दर का कुर्ता सिलायदो !! बाबू मुझे०...

बाबू:— टाई पै, कालर पै, चीजों विदेशी पै, है देखो कैसी बहार !

लड़के:—देशी मैं पहनूं, विदेशी न पहनूंगा, खद्दर से होगा उद्धार

बाबू मुझे खद्दर के कपड़े बनायदो !! बाबू मुझे०......

दोहा

भारत मां का लाड़ला गांधी पूत सपूत !

रख कर चरखा सामने बैठा काते सूत !

बाबू मुझे छोटा सा चरखा दिलायदो !! बाबू मुझे०...

—(*)—

स्थाई (ताल दादरा)

×			०			+			०			×			०		
स	म	म	म	म	ग	र	ग	ग	ग	ग	र	र	स	न	ध	न	स
वा	ऽ	बु	मु	झे	ऽ	ख	द्	द	र	की	ऽ	टो	ऽ	पी	ऽ	मं	ऽ
ध	न	र	स	–	–	ध	ध	–	प	म	–	ध	ध	–	प	म	–
गा	ऽ	य	दो	ऽ	ऽ	मं	गा	ऽ	य	दो	ऽ	मं	गा	ऽ	य	दो	ऽ
ध	ध	–	प	म	–	स	म	म	म	म	ग	ध	–	ध	–	ध	–
मं	गा	ऽ	य	दो	ऽ	वा	ऽ	बु	मु	झे	ऽ	टो	ऽ	पी	ऽ	मं	ऽ
ध	–	प	म	–	प	ध	–	न	–	ध	–	ध	–	प	म	–	प
गा	ऽ	य	दो	ऽ	ऽ	धो	ऽ	ती	ऽ	मं	ऽ	गा	ऽ	य	दो	ऽ	ऽ

स	म	म	म	म	ग	र	ग	ग	ग	ग	र	र	स	नृ	धृ नृ स
वा	ऽ	बु	मु	झे	ऽ	ख	द	द	र	का	ऽ	कु	र	ता	ऽ सि ऽ

धृ	नृ	र	स	–	–
ला	ऽ	य	दो	ऽ	ऽ

अन्तरा (दादरा)

+			०			×			०			×			०
प	ध	प	न	ध	प	म	प	म	ध	प	म	ग	म	ग	र स र
टा	ई	पै	का	लर	पै	ची	जों	वि	दे	शी	पै	है	दे	खो	कैसी व

म	–	–	–	–	–
हा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र

इन्हीं स्वरों पर बजाइये "देशी ... मैं उद्धार" फिर इसके बाद "बानू मुझे खद्दर के कपड़े बनाय दो" इस गाने के सब से पहिले बोल "बानू मुझे खद्दर की टोपी मगायदो" की तरह बजाइये ।

दोहा

ध – – – ध – ध – ध – – – ध – – – प – ध – प –
भा ऽ ऽ ऽ र ऽ त ऽ मा ऽ ऽ ऽ का ऽ ऽ ऽ ला ऽ ऽ ऽ ड़ ऽ

म – – – – – – – ग म प ध प म ग र स – – –
ला ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

(फिर "भारत मां का लाड़ला" बजाइये, लेकिन अबकी बार यह टुकड़ा ("आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ = ग म प ध प म ग र स – – –") न बजाइये बल्कि इसकी जगह आगे का टुकड़ा यूं शुरू कर दीजिये –

ग — — — म — — — ग म प ध प म ग र स — — — — — — — —

गां ऽ ऽ ऽ धी ऽ ऽ ऽ पू ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ त स पू ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ त

न — न — ध — न — ध — न — ध — न —

र ऽ ख ऽ फ ऽ र ऽ च ऽ र ऽ खा ऽ ऽ ऽ

प — ध — प — म — — — — — — — —

सा ऽ ऽ ऽ म ऽ ने ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ग — — — म — — — ग म प ध प म ग र

वै ऽ ऽ ऽ ठा ऽ ऽ ऽ का ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ते ऽ

स — — — — — — स

सू ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ त

यहां पर गाना खत्म हुआ, इसके बाद आप अगर कर सकें तो गांधी का चर्खा लड़कों से कतवा सकते हैं। लड़के हाथ के इशारे से चर्खा कातते रहें और साथ ही साथ यह बोल कहते रहें।

म ग म — ग र ग — स — र — ग — म —

वै ऽ ठा ऽ का ऽ ते ऽ सू ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ त ऽ (कहरवा)

\+ o + o

नोट—इस गाने की स्थाई, बजाने वालों की आसानी के लिये, हमने दादरे में लिख दी है, लेकिन कहरवे में ज्यादा खूबसूरत रहेगी। आपको इसके लिये कुछ नहीं करना है। आप अपना हारमोनियम शुरू कर दीजिये और अपने तबले वाले से 'कहरवा' बजवाइये ! आप देखेंगे कि आपकी उंगलियां खुद बखुद कहरवे की ताल पर नाचने लगेंगी।

यह नाच लड़कियों के काम में भी आ सकता है। उनकी आवश्यकतानुसार गाने में इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है। यह गाना भी उसी तर्ज़पर बजेगा, आगे के पृष्ठ पर देखिये:—

लड़कियों के लिये

लड़कियाँ।—अम्मा मुझे खद्दर की साड़ी मगायदो !
मंगायदे ! मगायदे ! मंगायदे !! अम्मा ...
साड़ी मंगायदे ! वाडी मंगायदो !
अम्मा मुझे खद्दर का जम्पर सिलायदो !! अम्मा ...
अम्मा।— मखमल पै, रेशम पै, चीजों विदेशी पै है, देखो कैसी बहार !
लड़कियाँ —देशी मे पहनूँ, विदेशी न पहनूँगी भारत का होगा उद्धार !
अम्मा मुझे खद्दर के कपड़े बनायदो !! अम्मा ...
भारत मा का लाड़ला गांधी, पून सपूत !
रख कर चरखा सामने बैठा काते सूत !
अम्मा मुझे छोटा सा चरखा दिलायदो !! अम्मा...

—(*).—

गज़ल

तमन्नाये दिली है बन्दये ईमान बन जाऊँ ।
पहनकर जामये इन्सानियत इन्सान बन जाऊँ ॥
मिला दूं खाक में यूं खाक कि एक जानरन जाऊं ।
जो आये काम इन्सा के वो शै भगवान बन जाऊं ॥
जो हक वाले हैं वो हर वक्त हक पर जान देते हैं ।
किसी का हो भला मुझसे अगर तो जान बन जाऊं ॥
किसा तेरा पसीना ये नहीं, हैं खून के क़तरे ।
हर एक मिट्टी का जर्रा कह रहा है धान बन जाऊं ॥
नहीं देखे हैं बालक आसमाने हिन्द माता के ।
हरएक मासूम की हसरत है रन में धान बन जाऊं ॥
हमें भी शौक हो ऐसा कि कांधे पर धरें खापा ।
किसानों की तरह मैं भी किसा भगवान बन जाऊं ॥
गरीबी के बग़ीचे में शजर हों दर्द उल्फत के ।
रहूँ आगोश दिलबर में गुलों सी शान बन जाऊं ॥
खुदी अपनी मिटादो "शेख पीरू" उनके कदमों पर ।
भगत बनजाऊं भगती से तो मैं इन्सान बन जाऊं ॥

—शेख पीरू नियारिया ।

श्री० पं० रघुनाथसहाय 'शातिर'
एम. ए. एल. टी.

इस अङ्क में 'डान्स खद्दर की टोपी' प्रकाशित हुआ है उसके स्वरकार और शब्दकार आपही हैं। डी.एन. हाईस्कूल मेरठ के आप म्यूज़िक इंचार्ज हैं। "सङ्गीत" से आपको विशेष प्रेम है। अभी हाल ही में आपने "सरस सङ्गीत" नाम की एक पुस्तक भी तैयार करके प्रकाशित कराई है।

सं सं गी त त —— का —— ध्रुपदांक

श्रीयुत पं० चिरंजीवलाल "जिज्ञासु"

"शङ्कर संगीत विद्यालय" लाहौर के आप प्रिन्सपल हैं। संगीत में आपने यथेष्ट उन्नति की है, इस अङ्क में आपकी स्वरलिपि "मालकोप" पृष्ठ १४८ पर देखिये।

G.P.H.
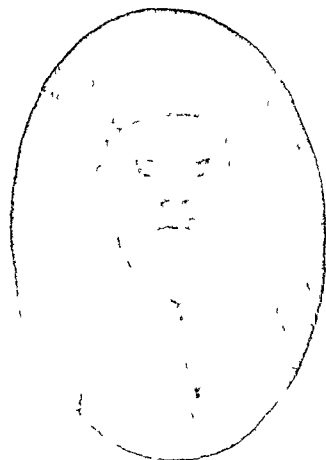
श्रीयुत धु० वि० मोकाशी-मोरगांव
आपकी एक स्वरलिपि "राग-भैरव" इस
विशेषाङ्क मे १०७ पृष्ठ पर देखिये।

गायक-नायक श्री० रघुनन्दन झा
आपकी स्वरलिपि 'रागमाला" इस अङ्क में
पृष्ठ १४८ पर प्रकाशित हुई है।

शब्दकार—साहब्रजमोहन सरनजी "मोहन"	राग पुष्पललित अर्जुन ताल मात्रा २४	स्वरकार—मास्टर धनीराम जी अमरोहा
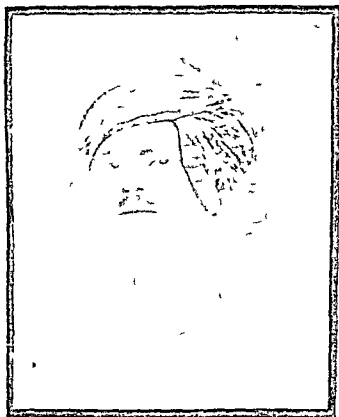
स्थायी—मौत से भी हमको अंजामे वफ़ा मिलता नहीं। ज़िंदगी का नाम मिलता है, पता मिलता नहीं॥
अन्तरा—मुश्किलाते दीद के शिकवे में है तौहीने शौक़। क्या मुहव्वत से मुहव्वत का सिला मिलता नहीं॥
इक ज़माना जा रहा है क़ाफ़ला दर क़ाफ़ला। और इक मैं हूँ कि कोई हमनवा मिलता नहीं॥
आह, वुसअत शौक़ की बढ़ कर हुई कैदे नज़र। सामने मंजिल है लेकिन रास्ता मिलता नहीं॥
रहमते कुल घेर लेती है तलब सादिक़ तो हो। मांगने वाला तो हो, देखो कि क्या मिलता नहीं॥
वहरे हस्ती के लिये दिल में तखैयुल चाहिये। एक तिनके का भी इसमें आसरा मिलता नहीं॥
इश्क़ के मज़हब में है तरके वफ़ा "मोहन" हराम। क्या हुआ दुनियां में गर नामे वफ़ा मिलता नहीं॥

स्थायी

+	।	।	।	।	।	।	।	।
धि न्ना	धि तृक धी न्ना	ती न्ना	ती तृक ती न्ना	तिट कत	गदि गन	धा त्रिक	धि न्ना तेटे कतृ	तु – न्ना
सं –	सं न न धा	– म	– म ग –	ग –	स –	स स	– नृस ग –	ग स
मौ ऽ	त से ऽ भी	ऽ ह	म को अं ऽ	जा ऽ	में ऽ	ब क़ा	ऽ मिल ता ऽ	न हीं
स –	स ग – म	ग ग	– ग स –	स –	नृ –	धृ नृ	स ग स –	– नृ
ज़ि ऽ	न्द गी ऽ का	ऽ ना	ऽ म मि ल	ता ऽ	है ऽ	प ता	मि ल ता ऽ	न हीं

अन्तरा

स स	स ग ग म	म मधनस	- सं - -	- -	न -	ध म	म ग - स	स स
मु श	कि ला ते दी	ऽ द	के ऽ शि फ	ये मे	है ऽ	तौ ऽ	ही न शौ ऽ	ऽ फ
स -	स ग - म	- ग	- ग स -	स -	ऩ -	ध़ ऩ	स ग ध -	- ऩ
क्या मु	ह ब्ब त से	ऽ मु	ह ब्ब त का	ऽ सि	ला ऽ	मि ल	ता ऽ न हीं	ऽ ऽ

नोठ—शेष अन्तरे भी इसी प्रकार बजाये जायेंगे।

राग-विवरणः—

यह राग पूर्वी ठाट से उत्पन्न हुआ है, इस में ध कोमल म तीव्र शेष स्वर शुद्ध हैं। 'र' तथा 'प' वर्ज्य है इसलिये इसकी जाति औढव है। गायन समय दिन के चतुर्थ प्रहर ३ वजे से ६ वजे तक।

—※—

ठुमरी-गौड़ सारंग

(तीन ताल, मात्रा १६)

शब्दकार 'अज्ञात' स्वरकर्ता श्रीमती भट्ट चन्द्रकला एम. राव

नहिं मानत श्याम मोसे करत अटक।
मग में मोरी मटुकी पटक दधि गटक सटक गयो नँद के निकट।
चुनरि झटक कछु अटपट बोले, उझक झांक घूंघट पट खोले।
हिये में कसक नटवर की लटक ॥ नहिं० ॥

——०——

स्थायी

														ध	प
														न	हिं
०				।				+				।			
ग	म	र	स	–	र	ऩ	स	ग	ग	ग	र	ग	म	ध	पध
मा	न	त	श्या	ऽ	म	मो	से	क	र	त	अ	ट	क	न	हिंऽ
ग	म	र	स	–	र	ऩ	स	ग	ग	ग	र	ग	म	ध	प
मा	न	त	श्या	ऽ	म	मो	से	क	र	त	अ	ट	क	म	ग
ग	म	ग	र	स	–	ऩ	–	प़	प़	ऩ	ऩ	स	स	स	स
में	ऽ	ऽ	ऽ	मो	ऽ	री	ऽ	म	टु	कि	प	ट	क	द	धि
र	र	र	र	र	ग	म	प	ग	म	ग	र	ग	म	ध	प
प	ट	क	स	ट	क	ग	यो	नं	द	के	नि	क	ट	न	हिं

अन्तरा

प	प	प	प	ध	ध	न	न	सं	रें	स	सं	सं	रं	सं	नध
चु	न	रि	भ	ट	क	क	छु	अ	ट	प	ट	वो	ऽ	ले	ऽऽ
प	ध	म	म	पध	मप	न	न	सं	सं	स	स	सं	र	स	–
चु	न	रि	भ	टऽ	कऽ	क	छु	अ	ट	प	ट	वो	ऽ	ले	ऽ
प	न	न	न	–	स	ध	न	सं	र	न	सं	ध	नृ	प	–
उ	भ	क	भा	ऽ	क	घू	ऽ	ध	ट	प	ट	वो	ऽ	ले	ऽ
ग	ग	ग	'र	ग	म	प	ध	ग	न	ग	र	ग	म	ध	प
हि	ये	मे	क	स	क	न	ट	व	र	की	लउ	ट	क	न	हि

—:—

"संगीत सागर" से सभी संतुष्ट हुए हैं !

(सम्मति न० २४)

श्रीयुत् गर्ग जी सादर सप्रेम नमस्कार !...

आपने "सङ्गीत सागर" प्रकाशित करके सङ्गीत जगत मे हलचल मचा दी है। जो सङ्गीतज्ञ लाखों खुशामद एवम् पैसा से जो बातें नहीं बतलाते थे वह इस ग्रन्थ द्वारा सहज ही में प्राप्त हो सकती हैं। इस ग्रन्थ द्वारा छोटे सङ्गीतप्रेमी से लेकर सङ्गीताचार्य तक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं हम आपको इसके प्रकाशन पर हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

—सङ्गीत कलाकार मा० नन्दलाल शर्मा विशारद, खाचरौद।

* समाप्त *